चन्द्रहास

विधि-विधान कभी टलता नहीं,

हठ किसी जन का चलता नहीं।

नियति ने वह योग मिला दिया—

कि जिसने 'विष' का 'विषया' किया!

मैथिलीशरण गुप्त

श्रीहरिः

चन्द्रहास

[पौराणिक रूपक]

लेखक

मैथिलीशरण गुप्त

प्रकाशक

साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)

संवत् १९८०

द्वितीयावृत्ति]   [मूल्य ।।।)

स्वर्गीय ठाकुर लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय "मयङ्क"।
प्रणय-सूत्र का चिह्न-सा चित्र आप का मित्र।
इस सु-विचित्र-चरित्र को कर दे आज सचित्र॥

पात्र-सूची

पुरुष—

धृष्टबुद्धि	—	कुन्तलपुर राज्य का मन्त्री
गालव	—	कुन्तलपुर के राजपुरोहित एक मुनि
चन्द्रहास	—	नाटक का नायक
विरोचन विमर्दन	—	धृष्टबुद्धि के विशेष सेवक
कुलिन्दक	—	चन्दनावती का राजा
विचक्षण	—	कुलिन्दक का मन्त्री
मदन	—	धृष्टबुद्धि का पुत्र
सुलक्षण	—	विचक्षण का पुत्र
माधव	—	विदूषक
कौन्तलप	—	कुन्तलपुर का राजा

कुछ ब्राह्मण और सेवक

स्त्रियाँ—

नियति	—	भाग्यदेवता
सुगामिनी	—	धृष्टबुद्धि की स्त्री
विषया	—	धृष्टबुद्धि की पुत्री
विजया	—	कुन्तलपुर के सेनापति की पुत्री
मल्लिका सुशीला सरला	—	विषया और विजया की सखियाँ
विलासिनी	—	मदन की स्त्री

श्रीगणेशाय नमः

चन्द्रहास

प्रस्तावना

नान्दी

(सवैया)

दान करे गुणगान गिरा
 पर-निन्दक निष्फलकाम रहें।
दक्षिण देव गणेश रहें
 बहु विघ्न न क्यों फिर वाम रहें॥
माँ कमला अनुकूल रहे
 धन-धान्य-भरे सब धाम रहें।
भक्षक का भय है न हमें
 बस रक्षक राघव राम रहें॥

सूत्रधार

हर्ष का विषय है कि आज की सभा में हिन्दी के बड़े बड़े विद्वान और सहृदय सज्जन उपस्थित हैं। इसलिए मेरा उत्साह

भी बढ़ रहा है। मैं चाहता हूँ कि आज कोई नया ही नाटक खेला जाय। क्योंकि—

(भुजङ्गी)

सदा एक ही दृश्य भाता नहीं

पुराना नये रङ्ग लाता नहीं।

दृगों के लिए चाहिए नव्यता,

तथा नव्यता के लिए भव्यता॥

तो यह अच्छा होगा कि मैं इस विषय में अपनी प्रियतमा से परामर्श कर लूँ।

(नटी का प्रवेश)

नटी

यह दासी स्वयं ही सेवा में उपस्थित होती है। कहिए, क्या आज्ञा है ?

सूत्रधार

अहा ! प्रिये, तुम स्मरण करते ही आ गईं। यह तो सफलता के लिए मुझे बड़ा अच्छा शकुन हुआ। किन्तु तुम कुछ चिन्तित-सी दिखाई देती हो।

नटी

हृदयेश्वर यदि हृदय की बात जान लें तो इसमें आश्चर्य ही क्या। हमारी पड़ोसिन सुखदेवी का इकलौता बच्चा आज

खेलता हुआ न जाने कहाँ चला गया। उसी बेचारे अनाथ का स्मरण करके मेरा मन कुछ चिन्तित-सा हो रहा है।

सूत्रधार

मैं अभी उसकी खोज कराता हूँ। चिन्ता की कोई बात नहीं। देखो—

(शार्दूलविक्रीडित)

है जो एक अनाथ नाथ उसके त्रैलोक्य के नाथ हैं,
कोई हो कि न हो परन्तु हरि तो सर्वत्र ही साथ हैं।
होता है उलटा सु-लाभ जन का कोई करे जो क्षति,
साक्षी है वह धृष्टबुद्धि इसका श्री चन्द्रहास प्रति ॥

(प्रस्थान)

प्रथमांक

प्रथम दृश्य

कुन्तलपुर

धृष्टबुद्धि अपने द्वार पर खड़ा है।

धृष्टबुद्धि

स्त्रियों के व्रत और पर्वों के मारे मैं तो हैरान हो गया। नित्य दान, नित्य ब्राह्मण-भोजन, कुछ ठिकाना है! और जब तक द्विज देवता भोजन करके दक्षिणा न ले लें तब तक न खाना न पीना! मुझसे तो यह सब बखेड़ा नहीं होता। पर स्त्रियों के आगे एक भी नहीं चलती। उन्हें तनिक में ही मङ्गल की भावना और तनिक में ही अमङ्गल की आशङ्का होने लगती है! आज का तो कहना ही क्या? इस राज्य के पुरोहित महात्मा गालव आकर गृह पवित्र करने वाले हैं! पर वे अभी तक नहीं आये। मुझे इतना अवकाश कहाँ कि खड़ा खड़ा राह देखा करूँ। उधर ब्राह्मणों को चिन्ता ही क्या? जीते रहें उनके यजमान। वे कमाने वाले हैं। ऐसी दशा में खाने की क्या जल्दी!

(नेपथ्य में)

वाह ! तुम तो बड़े अच्छे लड़के हो ।

धृष्टबुद्धि

(चौंक कर)

जान पड़ता है अब महाराज को अवकाश मिला है ।

(कुछ ब्राह्मणों के साथ चन्द्रहास का हाथ पकड़े हुए गालव मुनि का प्रवेश)

धृष्टबुद्धि

महाराज ! प्रणाम । आज तो बड़ा विलम्ब हुआ ।

गालव

स्वस्तिरस्तु । मन्त्रिवर ! निस्सन्देह हमें कुछ विलम्ब हो गया । यह बालक बड़ा सुलक्षण है । मार्ग में बालकों के साथ यह खेल रहा था । हम लोग कौतूहल-वश थोड़ी देर वहीं ठहर गये थे ।

धृष्टबुद्धि

क्यों न हो, महात्मा लोग स्वभाव से ही सरल और उदार होते हैं ।

गालव

यह बालक ही ऐसा है कि इसे देख कर विशेष देखने की इच्छा होती है —

(वसन्ततिलक)

सौन्दर्य्य का विमल हो जिसमें विकास,
होता विशेष उसमें प्रभु का प्रकाश ।

निष्पङ्क बालक मुखों पर श्रीनिवास,
प्रायःसदैव रखते निज चन्द्रहास ॥

चन्द्रहास

चन्दहाच तो मेला नाम है ।

गालव

(हँसकर)

हाँ, तुम्हारी ही तो बातें कर रहे हैं।

धृष्टबुद्धि

बालक को अपने नाम का धोखा हो गया। निस्सन्देह यह भोला भाला बच्चा बड़ा सुन्दर है ।

गालव

मन्त्रिवर ! तुम तो जानते ही होगे कि यह किस भाग्य-शाली का कुलभूषण है ?

धृष्टबुद्धि

(गर्व से)

महाराज ! मुझे राज-काज से इतना अवकाश कहाँ ? कुन्तलपुर की गलियों में न जाने ऐसे कितने अनाथ लड़के मारे मारे फिरते हैं ।

गालव

(विरक्ति से)

ऐसा न कहो—

(उपजाति)

अनाथ कोई जग में नहीं है,
त्रैलोक्य का नाथ सभी कहीं है।
क्या ठीक है जो यह मार्गचारी—
बने तुम्हारा विषयाधिकारी ॥

सब ब्राह्मण

(हाथ उठा कर)

ऐसा ही हो।

धृष्टबुद्धि

(विस्मय और खेदपूर्वक)

महाराज ! यह अच्छा आशीर्वाद दिया आपने !

गालव

भगवान् की इच्छा। भाग्य की बात।

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

मानों भगवान् और भाग्य सब कुछ इन्हीं के हाथ में है। कुछ परवा नहीं। देखा जायगा।

गालव

मन्त्रिवर ! क्या सोचते हो ?

धृष्टबुद्धि

महाराज ! मैं यह सोचता हूँ कि मेरी सम्पत्ति का अधिकारी तो मेरा पुत्र मदन है।

गालव

भावी प्रबल है। किन्तु मदन के लिए कोई चिन्ता की बात नहीं।

नेपथ्य में

चन्द्रहास, चन्द्रहास, ओ चन्द्रहास ! कहाँ गया ?

चन्द्रहास

(चौंक कर, गालव से)

मुझे बालक बुलाते हैं।

गालव

अच्छा।

(धृष्टबुद्धि से)

मन्त्रिवर ! चन्द्रहास के लिए थोड़ी सी मिठाई मँगाओ।

धृष्टबुद्धि

बहुत अच्छा।

(जाता है)

गालव

(ब्राह्मणों से)

देखो, चन्द्रहास की बाल चेष्टाएँ कैसी मनोहारिणी हैं—

(वसन्ततिलक)

है देखता स्थिर कभी यह निर्निमेष,
होता कभी चकित चञ्चल-सा विशेष।

मानों खिला रुचिर-मञ्जु-मुखारविन्द—
पीते कभी मधु कभी उड़ते मिलिन्द ॥

सब

निस्सन्देह यही बात है।

गालव

(चन्द्रहास से)

अच्छा, चन्द्रहास ! हम तुम्हें एक ऐसा मन्त्र बतलाते हैं कि तुम जो खेल खेलोगे उसी में तुम्हारी जीत हुआ करेगी। बोलो—हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।

चन्द्रहास

हले लाम, हले लाम, लाम लाम, हले हले।

(सब हँसते हैं)

एक ब्राह्मण

निस्सन्देह यह ऐसा मन्त्र है कि इसे जानने वाला कहीं हार नहीं सकता।

चन्द्रहास

तो मैं इसे न भूलूँगा।

(फिर पढ़ता है)

गालव

देखो, चन्द्रहास की मेधाशक्ति कैसी प्रबल है !

ब्राह्मण

निस्सन्देह जैसा रूप वैसा ही गुण। जैसी श्री वैसी ही धी।

(धृष्टबुद्धि का प्रवेश)

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

आः मेरी ही मिठाई से मेरे भावी शत्रु का मुँह मीठा होगा।

(प्रकट)

महाराज ! यह है मिठाई।

(देता है)

गालव

(लेकर चन्द्रहास को देते हुए)

लो, इसे तुम खाना और अपने साथियों को खिलाना। उस मन्त्र को कभी न भूलना। समझ गये ?

चन्द्रहास

समज गया। परनाम।

गालव

जीते रहो। जीते रहो।

(चन्द्रहास जाता है)

धृष्टबुद्धि

महाराज ! अब भीतर चल कर गृह पवित्र कीजिए। आज तो सचमुच बड़ी देर हुई !

गालव

चलो।

(पटाक्षेप)

द्वितीय दृश्य

कुन्तलपुर, धृष्टबुद्धि का एक कमरा

(धृष्टबुद्धि का प्रवेश)

धृष्टबुद्धि

हाँ, तो चन्द्रहास मेरी सम्पत्ति—अतुल सम्पत्ति—का अधिकारी होगा ? और मेरी सन्तान ? फिर उसके लिये क्या है ? परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता। इस जन्म में तो मैं ऐसा होने न दूँगा। हाँ, चन्द्रहास मर कर फिर मेरे घर उत्पन्न हो तो मैं नहीं कह सकता। ब्राह्मणों ने विना कुछ सोचे बिचारे ही वैसा कह दिया है। किन्तु मैं उनके वचन पलट दूँगा—असत्य कर दूँगा। मैं उन्हें दिखला दूँगा कि मेरी सम्पत्ति का अधिकारी वास्तव में मेरा पुत्र मदन ही है। मैंने अपने विश्वासी और विशेष कार्य्य करने वाले दो मनुष्यों को आज्ञा दे दी है कि दूर, किसी वन में ले जाकर चन्द्रहास को मार डालो। वह तुच्छ बालक जीता भी रहता तो भी मेरा क्या बिगाड़ सकता था ? पर सन्देह के अंकुर को उखाड़ डालना ही अच्छा होता है।

क्योंकि आज जो अंकुर है वही एक दिन पुष्ट जड़वाला विशाल वृक्ष हो सकता है। अथवा आग का एक कण भी योग पाकर धधक उठता है। माना कि वह लड़का पृथ्वी पर सौन्दर्य्य का एक आदर्श था। पर क्या इससे मैं उसे अपनी सम्पत्ति का अधिकारी बन जाने देता! अच्छा, अब इस चिन्ता को छोड़ूँ।

(टहलता है)

(नियति का प्रवेश*)

नियति

(वसन्ततिलक)

जो पुष्प से मृदु तथा पवि से कठोर,
मैं हूँ वही नियति सुन्दर और घोर!
है कौन जो कर सके गति का निरोध?
मेरा विरोध बस है अपना विरोध॥
मेरे अधीन समझो यह सृष्टि सारी,
मैं रङ्क को नृप करूँ नृप को भिखारी!
जेता पराजित, पराजित भी विजेता--
होता, जहाँ बस मुझे वह जान लेता॥
जो रामचन्द्र निज पैत्रिक राज्य पाते—
मेरे प्रभाव-वश वे वन ओर जाते।

---

* नियति का प्रवेश सर्वत्र अदृश्य भाव से है। उसे केवल दर्शक देख सकेंगे।

है भिक्षुता जिन युधिष्ठिर को जिलाती

सौ कौरवों पर उन्हें जय मैं दिलाती !

है कौन भक्षक भला जब रक्षिणी मैं ?

है कौन रक्षक बनूँ जब भक्षिणी मैं ?

मेरे करस्थ रहता वह काल भी है,

मेरी कथा कलित और कराल भी है !

संसार की यह सभी सुख-दुःखशीला—

मैं ही सदैव करती उदयास्त-लीला।

मैं ही यथेष्ट सब हूँ रचती-रचाती,

त्रैलोक्य को अँगुलियों पर हूँ नचाती॥

उद्योगिजीव ! पहले मुझको मनालो,

जो कार्य्य हो फिर उसे सुख से बनालो।

है ज्यों सदा उचित उद्यम साध्य दैव,

त्यों दैव साध्य सब उद्यम हैं सदैव॥

श्री चन्द्रहास यह जो अब है भिखारी—

था राजपुत्र यह सर्व सुखाधिकारी।

राजा सुधार्म्मिक पिता इसका भला था,

मैंने परन्तु रण में उसको छला था।

जो हो, प्रसन्न इससे अब मैं हुई हूँ,

निर्मोह नित्य किस से, कब, मैं हुई हूँ ?

रे धृष्टबुद्धि ! बल है सब व्यर्थ तेरा,
श्री चन्द्रहास पर है अब हाथ मेरा ॥

(प्रस्थान)

धृष्टबुद्धि

(चौंक कर)

अरे, मेरी आँखों के आगे यह बिजली-सी क्या चमक गई ! और मेरे कान क्यों गूँजने लगे ?

(इधर उधर देख कर)

यहाँ तो कुछ नहीं दिखाई देता । मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हो गया ? नहीं, नहीं, भ्रम कैसा ? मेरा शरीर अवसन्न-सा हो रहा है । ओफ ! सिर घूमने लगा ! यह वायु का विकार तो नहीं है ? किन्तु वायु में तो कोई परिवर्तन जान नहीं पड़ता । मालूम होता है, मैं खड़ा न रह सकूँगा !

(द्वार की ओर देखकर)

अरे, कोई है ? शीघ्र ही वैद्यराज को बुला लाओ ।

(लटपटाता हुआ जाता है)

(पटाक्षेप)

तृतीय दृश्य

एक गहन कानन

(चन्द्रहास को लिये हुए विमर्दन और विरोचन का प्रवेश)

विमर्दन

बस, यहीं ।

(पत्तों की खड़खड़ाहट)

विरोचन

अरे, यह क्या ?

विमर्दन

(इधर उधर देख कर)

है तो कुछ नहीं । पर ज़रा और आगे बढ़ चलो ।

(चलते हैं)

विरोचन

मुझे ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई हमारे साथ साथ चल रहा हो !

विमर्दन

पैरों की आहट-सी तो मुझे भी मालूम होती है । अच्छा, ठहरो, सुनें ।

(दोनों कान लगा कर सुनते हैं)

विरोचन

कुछ नहीं है।

विमर्दन

हाँ, भ्रम ही था। इस विजन वन में कौन आने लगा?

विरोचन

और दैव के सिवा हमारा आना कोई जानता भी तो नहीं।

(फिर चलते हैं)

विमर्दन

(चौंक कर)

अरे फिर आहट!

विरोचन

तूने ठीक कहा। मुझे भी मालूम होती है। इस घोर वन में दैव के सिवा और कौन है। क्या वही हमारा पीछा कर रहा है?

(पत्तों की खड़खड़ाहट)

विमर्दन

(चौंक कर)

अरे, यह क्या? कोई पक्षी तो नहीं उड़ा!

(देख कर)

नहीं, पक्षी तो नहीं है।

विरोचन

हवा भी नहीं चलती। कुछ समझ में नहीं आता।

विमर्दन

मेरा हृदय धड़कता है। स्वामी की आज्ञा से कितने ही काम किये पर ऐसा कभी नहीं हुआ !

विरोचन

पर ऐसा भयङ्कर काम कभी नहीं किया। शायद यह घातकों से भी न होता।

विमर्दन

घातकों के योग्य न समझ कर ही तो हमें सौंपा गया है। परन्तु इस सुन्दर बालक को मरवा कर मन्त्रीजी को क्या मिलेगा ?

विरोचन

हाय ! धिक्कार है इस नीच कर्म्म को जिसमें एक अनाथ बालक की हत्या करनी पड़े।

विमर्दन

इस कठोर आज्ञा का कोई कारण भी तो नहीं जान पड़ता। अथवा—

(इन्द्रवंशा)

यों ही, बड़ा हेतु हुए बिना कहीं—
होते बड़े लोग कठोर यों नहीं।
वे हेतु भी यों रहते सु-गुप्त हैं—
ज्यों अद्रि अम्भोनिधि में प्रलुप्त हैं !

विरोचन

कुछ भी हो, पर मुझसे तो यह काम न होगा।

विमर्दन

मेरी भी यही दशा है। किन्तु—

विरोचन

किन्तु क्या? तू ही बता, यह बालक किस अपराध की सीमा के भीतर आ सकता है? फिर भला कौन ऐसा निर्दय होगा जो इस सुकुमार शरीर पर प्रहार कर सके?

विमर्दन

ठीक है—

(उपजाति)

बड़े बड़े लोचन लोल जैसे—
प्रफुल्ल हैं गोल कपोल वैसे।
सौन्दर्य्य ऐसा न हुआ, न होगा,
सजीव कोई यह है खिलोना॥

विरोचन

क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे इस सर्वगुण-सम्पन्न बालक का वध न करना पड़े?

विमर्दन

भाई, हम पराधीन हैं। स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही हमारा धर्म्म है।

विरोचन

धिक्कार है इस पराधीनता को और धिक्कार है ऐसे धर्म को।

विमर्दन

अरे, ऐसा कहना अनुचित है। क्योंकि—

(द्रुतविलम्बित)

इस धरा पर जो कुछ धर्म्म है,
वह कभी न बुरा न अकर्म्म है।
अधम हो सकते हम आप हैं,
अखिल कर्म्म परन्तु अपाप हैं॥

विरोचन

पर किसी निरपराध को मारना भी हमारा धर्म्म है?

विमर्दन

नहीं, मैंने कब कहा है कि किसी निरपराध को मारना हमारा धर्म्म है? हमें तो स्वामी की आज्ञा का पालन करना है और यही हमारा धर्म्म है।

विरोचन

सिर नहीं कपाल। बात तो वही रही।

विमर्दन

वही कैसे रही? इस बच्चे को हम अपने लिए मारते हैं या स्वामी की आज्ञा से उनके लिए?

विरोचन

अच्छा, यही सही। पर क्या स्वामी की उचित और अनु-
चित सभी आज्ञाएँ माननी चाहिए ?

विमर्दन

भाई, बात तो कुछ ऐसी ही है। क्योंकि सेवक-धर्म्म बड़ा
कठिन होता है। देखो—

(वसन्ततिलक)

था कालनेमि रजनीचर नीच तो भी—
क्या स्वामि-कार्य्य-हित आप मरा न सो भी ?

विरोचन

(बीच में)

है सर्वथा अहह ! सेवक जन्म भार,
होता कभी न उसमें कुछ स्वाधिकार !

परन्तु कुछ भी क्यों न हो, मैं तो पहले ही कह चुका हूँ
कि यह काम मुझसे न होगा।

विमर्दन

बड़ी उलझन है। मेरा भी हाथ नहीं उठता और दूसरा
कोई उपाय भी नहीं सूझता।

(द्रुतविलम्बित)

इधर तो करुणा पकड़े खड़ी,
उधर धार्म्मिकता जकड़े खड़ी।

यह प्रसङ्ग पड़ा अति घोर है,
कठिनता समझो सब ओर है ॥

विरोचन

हाय ! यह बालक इतना सुन्दर होकर ऐसा भाग्यहीन क्यों हुआ ?

(चन्द्रहास से)

बच्चे ! यदि हम तुझे यहाँ मार डालें तो ?

चन्द्रहास

तुम क्या मुजे मालने को लाये हो ? अब हलिमन्दिल कितनी दूल है ?

विरोचन

(विमर्दन से)

सुना, कैसा सरस और कोमल कलकण्ठ है ?

विमर्दन

सुना है—

(मालिनी)

विमल वदन मानों है नया फूल फूला,
रदन हिमकणों से देख के चित्त भूला ।
सुन कर यह वाणी तोतली और मीठी—
मृदु-मधु-मधुता भी हो गई आज सीठी ॥

परन्तु—

विरोचन

परन्तु क्या ?

विमर्दन

क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता—

(द्रुतविलम्बित)

यह सुकण्ठ अभी कट जायगा,
मधुर हास्य सभी हट जायगा।
सरल भाव कहीं बह जायँगे,
रुधिर-मांस पड़े रह जायँगे !

विरोचन

हाय ! इस बात की तो याद आते ही मेरा मन न जाने कैसा हो जाता है।

(ऊपर की ओर देख कर)

(शिखरिणी)

बिना फूला ही जो यह सुमन था शुष्क करना,
न था पृथ्वी में जो सरस इसका गन्ध भरना।
विधे ! तो क्यों ऐसा रुचिर इसको निर्मित किया !
लिया क्या तू ने हा ! श्रम विफल सारा कर दिया॥

विमर्दन

मैं भी यही कहता हूँ—

(द्रुतविलम्बित)

कुसुम में कटु कीट-विकास है,
कर रहा रस में विष वास है।
विपुल विघ्न भरे शुभ काम हैं,
विधि-विधान विलक्षण वाम हैं !

विरोचन

जो हो, पर क्या तू इसे मार ही डालेगा ?

विमर्दन

कौन ऐसा होगा जो मोती को चूर्ण करना चाहे ? पर स्वामी ने आज्ञा जो दी है ।

विरोचन

अच्छा, यह करो कि इस बच्चे को यहीं वन में छोड़ चलो । रात में कोई हिंस्र पशु आकर इसे खा जायगा । इससे हमें अपने हाथ से मारना भी न पड़ेगा और स्वामी का काम भी हो जायगा ।

विमर्दन

(सोच कर)

यद्यपि यह स्वामी की आज्ञा का पूरा पूरा पालन करना नहीं कहा जा सकता पर इस बच्चे पर चित्त में सहज ही ममता उत्पन्न होने से तेरी बात भी नहीं टाली जाती । मेरा मन तो इसे मरने के लिए छोड़ जाने में भी दुःखित होता है । पर लाचारी है । इससे यही सही । किन्तु—

विरोचन

तूने फिर किन्तु परन्तु लगाया !

विमर्दन

अरे भाई, सुन तो—

(उपेन्द्रवज्रा)

बड़ा कि छोटा कुछ कार्य्य कीजे,

परन्तु पूर्वापर सोच लीजे ।

बिना बिचारे यदि काम होगा—

कभी न अच्छा परिणाम होगा ॥

विरोचन

अच्छा, मुझसे भूल हुई । जो कहना हो, कह ।

विमर्दन

यदि यह बालक किसी प्रकार बच गया तो ?

विरोचन

यह आशङ्का निर्मूल है । यदि इस लड़के का जीवन होता तो यह मन्त्री की कोपदृष्टि में ही क्यों पड़ता ? इस विकट वन में न जाने कौन जन्तु इसे खा जायगा । देखता नहीं, कैसा विजन और गहन कानन है—

(शार्दूलविक्रीडित)

चारों ओर कठोर कण्टकमयी है घोर झाड़ी खड़ी,

है ऐसी घनता कि रात दिन की है एकता-सी बड़ी ।

छाई है जन-शून्यता, कपि तथा लंगूर ही हैं कहीं,
क्या लोकालय की तथा प्रलय की है मध्य सीमा यहीं !

और भी—

(भुजङ्गप्रयात)

कहीं जन्तु जो हिंस्र हैं, बोलते हैं,
कहीं स्यार, मार्जार ही डोलते हैं।
यहाँ वायु में भी भरी भीति जानों,
मिला चाहती है अभी मौत मानों !

विमर्दन

एक असुविधा और भी है।

विरोचन

वह भी सुनूँ ?

विमर्दन

इसको मारने का प्रमाण-स्वरूप इसका कोई अङ्ग भी तो स्वामी को दिखाना है !

विरोचन

यह तो बड़ी विपद है। भाई, तू ही इसका कोई उपाय सोच। मेरी बुद्धि तो काम नहीं देती।

विमर्दन

(चन्द्रहास को ऊपर से नीचे तक देख कर)

इस बच्चे के बाँयें पैर में छः अँगुलियाँ हैं। इनमें से यह छठी अँगुली काट ली जाय तो कैसा ?

विरोचन

(प्रसन्न होकर)

वाह भाई, तूने अच्छी तरकीब सोची। मानों हम लोग चिकित्सक बन कर इस अधिक मांस को काट लेंगे। जान पड़ता है, विधाता ने हमारे सुभीते के लिए ही इसे बनाया था।

विमर्दन

तो अब विलम्ब न करना चाहिए।

विरोचन

ठीक है। चलो, उस ओर घनी लतायें हैं। इससे वहाँ कुञ्ज-सा बन गया है। वहीं चल कर काम पूरा करें।

विमर्दन

अहा ! कैसी सुगन्धि आई।

विरोचन

(मुसकरा कर)

यह सुगन्धि नहीं, दैव की प्रसन्नता का पुरस्कार है !

विमर्दन

कुछ भी हो पर सुगन्धि तो अपूर्व है।

विरोचन

निस्सन्देह।

(चन्द्रहास से)

देखो, वह हरि-मन्दिर है। वहीं तुमको भगवान् मिलेंगे।

(झुरमुट की ओर बतलाता है)

चन्द्रहास

तो चलो—

हले लाम हले लाम लाम लाम हले हले।

(पटाक्षेप)

चतुर्थ दृश्य ।

स्थान चन्दनावती का राजप्रासाद

(कुलिन्दक का प्रवेश)

कुलिन्दक

(गान)

न तेरी दया का प्रभो ! पार है ,
खुला सर्वदा दान का द्वार है ।
मिलेगा वही जो जिसे चाहिए,
भरा भूतियों से सु-भंडार है ॥
न सङ्कोच देते हुए है तुझे,
अहा ! कौन ऐसा महोदार है ।
बढ़ा हाथ यों ही रहे सर्वदा,
न तेरे बिना और आधार है ॥

(विचक्षण का प्रवेश)

विचक्षण

(स्वगत)

आज तो महाराज प्रेम से गद्गद हो रहे हैं । अचानक ऐसे आनन्द का क्या कारण है ?

(आगे बढ़ कर)

महाराज की जय हो ।

कुलिन्दक

आओ, मन्त्रिवर ! आओ । आज मैंने तुम्हें सवेरे ही बुला लिया है । बैठो ।

विचक्षण

जो आज्ञा ।

(बैठता है)

कुलिन्दक

भगवान् की दया से आज मेरे सब अभीष्ट सिद्ध हो गये ।

विचक्षण

महाराज इसी योग्य हैं ।

कुलिन्दक

देखो, भगवान् ने हमें सब कुछ दिया था । पर पुत्र से अब तक राजभवन सूना ही था ।

विचक्षण

इसमें क्या सन्देह है—

(मन्दाक्रान्ता)

श्रेष्ठों के भी सुख-सदन में पूर्व योगानुसार,
पाई जाती कुछ त्रुटि कभी सर्वथा दुर्निवार ।

परन्तु—

उद्योगों से तदपि उसको अन्त में वे मिटाते,
सत्कर्मों से सब सुख यहीं हैं महाप्राण पाते ॥

कुलिन्दक

जो हो, हम तो ईश्वरेच्छा समझ कर इस विषय में सन्तुष्ट थे परन्तु महारानी विशेष चिन्तित रहा करती थीं।

विचक्षण

उनके लिए चिन्ता की बात ही थी। क्योंकि—

(आख्यानकी)

गोदी भरी हो कुल-नारियों की,
(स्वभाव से ही सुकुमारियों की।)
कृतार्थता वे तब मानती हैं,
अभाव भी और न जानती हैं॥

कुलिन्दक

परन्तु महारानी भी यह जानती थीं कि जो कुछ होता है भगवान् का ही किया होता है। इसलिए वे दिन रात उन्हीं की आराधना में लगी रहती थीं, सो तो तुम जानते ही हो।

विचक्षण

बहुत अच्छी तरह से—

(उपजाति)

हुआ व्रतों से कृश गौर गात्र,
है दीखता केवल रूप मात्र।
वे साधना की प्रतिमूर्ति-सी हैं,
आराधना की अति पूर्ति-सी हैं!

कुलिन्दक

अन्त में भगवान् की दया हुई।

विचक्षण

क्यों न हो—

(द्रुतविलम्बित)

यदि दयामय ही न दया करें,
न जन के मन के दुख को हरें।
फिर रहें 'करुणाकर' वे कहाँ?
स्मरण कौन करे उनका यहाँ?

कुलिन्दक

परन्तु भगवान् ने जिस प्रकार दया की है उसका स्मरण करके मेरा चित्त गद्गद हो उठता है। मुझे विश्वास है कि सब बातें सुन कर तुम्हारी भी ऐसी ही दशा होगी।

विचक्षण

जब महाराज कहते हैं तब निस्सन्देह ऐसा ही होगा। मैं ध्यान से सुनता हूँ।

कुलिन्दक

अच्छा, सुनो। परसों रात को भगवान् की आराधना कर के ज्यों ही महारानी सोईं त्योंही उन्हें एक स्वप्न दिखाई दिया।

विचक्षण

हाँ।

कुलिन्दक

उन्होंने देखा कि स्वयं भगवान् उन्हें साकार रूप में दर्शन दे रहे हैं और वे मेरे साथ उनकी पूजा कर रही हैं।

विचक्षण

धन्य है।

कुलिन्दक

अन्त में भगवान् मुझे एक गहन वन में ले गये। वहाँ एक दिव्य बालक को दिखा कर उन्होंने मुझसे कहा—यह असाधारण बालक तुम्हें औरस पुत्र से भी अधिक सुखी करेगा।

विचक्षण

अहा ! बड़ी विचित्र बातें हैं।

कुलिन्दक

हाँ, वह स्वप्न देख कर जब महारानी जागीं तब प्रभात हो रहा था। वही प्रभात हमारे लिए सु-प्रभात हुआ। वह पवित्र प्रभात हमारे भाग्योदय का प्रभात था—दयामय की दया के प्रकाश का प्रभात था।

विचक्षण

इस अपूर्व वृत्तान्त को सुन कर मुझे रोमाञ्च हो रहा है और आगे क्या हुआ, यह जानने के लिए मेरा कौतूहल बढ़ रहा है।

कुलिन्दक

सवेरे महारानी ने मुझे सब हाल सुनाया। पर स्वप्न की बात समझ कर मैंने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

विचक्षण

यह स्वाभाविक ही है।

कुलिन्दक

दैवयोग से कल ही मैं आखेट करता हुआ एक बड़े वन में जा पहुँचा। वह वन कुन्तलपुर की सीमा पर था और ठीक वैसा ही था जैसा महारानी ने स्वप्न में देखा था। अब तो मेरे हृदय में वे सब बातें बिजली की तरह दौड़ गईं।

विचक्षण

भगवान् की बड़ी विचित्र महिमा है।

कुलिन्दक

फिर मैं उस गहन वन में वैसा स्थान खोजने लगा जैसे स्थान में महारानी ने वह बालक देखा था। अन्त में वह प्राकृतिक कुञ्ज भी मिल गया।

विचक्षण

फिर, फिर?

कुलिन्दक

मैंने देखा कि—

(इन्द्रवंशा)

सद्योवियोगी निज वृन्त सङ्ग से,
छाया हुआ सौरभ, रूप, रङ्ग से।
स्वर्गीय पुष्पोपम एक बाल था,
रोता न था, गुञ्जित भृङ्गजाल था!

विचक्षण

(गद्गद होकर)

महाराज, मैं क्या कहूँ; ऐसी अपूर्व और अद्भुत बात मैं-ने कभी नहीं सुनी। आप धन्य हैं।

(वसन्ततिलक)

है आपके सदृश कौन कृती यथार्थ—
यों स्वप्न भी फलित हो जिनके हितार्थ?
जो स्वप्न सुप्ति तक ही बस दृष्टि आता—
जागो जहाँ फिर कहाँ वह राज्य जाता!

कुलिन्दक

हुआ। अब यह बताओ, चन्द्रहास को अपना पुत्र मानकर रखने में कोई बाहरी बाधा तो नहीं?

विचक्षण

भला भगवान् के दान की कौन उपेक्षा करेगा? परन्तु सांसारिक दृष्टि से एक अज्ञात-कुलशील बालक को पुत्र बनाकर रखना अवश्य ही आक्षेप की बात है। मेरी राय में तो अभी इस बात को न उठाना ही अच्छा होगा। कुमार का लालन पालन होने दीजिए, फिर सब हो जायगा। अभी कुमार के पाने की

बात भी इस तरह न फैलनी चाहिए जिससे लोगों को शङ्का करने का अवसर मिले। यह राज्य कुन्तलपुर के अधीन है। वहाँ के प्रधान मन्त्री धृष्टबुद्धि को महाराज जानते ही हैं। यदि उसे इन सब बातों का पता लग गया कि कुमार इस इस तरह वन में पड़े हुए पाये गये हैं तो वह बीस बखेड़े खड़े कर सकता है। मैं तो समझता हूँ कि कुमार का नाम भी बदल दिया जाय तो अच्छा।

कुलिन्दक

तुम्हारी राय ठीक है। मैं भी यही उचित समझता हूँ। तो चन्द्रहास का नाम अब से भगवद्दत्त हो।

विचक्षण

ठीक है, यह नाम सार्थक भी है।

कुलिन्दक

किन्तु उसे देख कर यह कोई नहीं कह सकता कि यह बालक राजपुत्र नहीं है। कहने से क्या, आओ, मैं तुम्हें दिखा दूँ।

विचक्षण

जो आज्ञा।

—:०:—

द्वितीयांक

प्रथम दृश्य

कुन्तलपुर, धृष्टबुद्धि का घर

धृष्टबुद्धि और सुगामिनी

सुगामिनी

देखो, बेटी विवाह के योग्य हो गई है। पर तुम ने अभी तक वर का निश्चय नहीं किया! थोड़े दिन और यही दशा रही तो लोक-निन्दा होने लगेगी।

धृष्टबुद्धि

मुझे इस बात का ध्यान है। पर क्या करूँ, इधर काम के मारे अवकाश ही नहीं मिला। तुम चिन्ता न करो, तुम्हें लोक-निन्दा न सुननी पड़ेगी।

सुगामिनी

न तुम्हें काम-काज से अवकाश मिलेगा, न मेरी बेटी का विवाह हो सकेगा। मेरे भाग्य में तो लोक-निन्दा ही लिखी जान पड़ती है। न जानें तुम्हें कैसे नींद आती है!

धृष्टबुद्धि

मैं क्या करूँ, इधर महाराज ने भी राज-काज देखना प्रायः छोड़ दिया है। वे वृद्ध भी हैं और पुत्र के न होने से कुछ उदासीन भी रहते हैं ऐसी दशा में सब भार मुझी पर आ पड़ा है।

सुगामिनी

जिससे बेटी के लिए वर की खोज भी नहीं कर सकते, क्यों?

धृष्टबुद्धि

अच्छा, अब मैं शीघ्र ही इस विषय में उद्योग करूँगा। तुम देखोगी कि किसी राजकुमार के साथ, थोड़े ही दिनों में, विषया का विवाह होगा।

सुगामिनी

यह तो मैं ब्राह्मणों से पहले ही सुन चुकी हूँ कि विषया किसी बड़े ही सु-लक्षण राजकुमार को ब्याही जायगी।

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

ब्राह्मणों के कहने से तो नहीं, पर मेरे प्रताप से अवश्य ऐसा होगा। ब्राह्मणों की कही हुई कौन कौन सी बात सच होती है। एक बार उन्होंने चन्द्रहास नामक एक अनाथ बालक के विषय में मुझसे कहा था कि यह तुम्हारी सम्पत्ति का अधिकारी होगा। परन्तु अब तक उसका दूसरा जन्म हो चुका होगा।

सुगामिनी

तो क्या सोच रहे हो ?

धृष्टबुद्धि

यही कि ब्राह्मणों ने विषया के भाग्य में ऐसा अच्छा वर बतलाया है फिर भी तुम उसके विषय में इतनी चिन्ता करती हो !

सुगामिनी

चिन्ता न करूँ तो क्या करूँ ? क्या भाग्य में लिखी हुई वस्तु के लिए उद्योग न करना चाहिए ?

(एक ओर मदन का प्रवेश)

मदन

विषया, ओ विषया !

(नेपथ्य में)

भैया, मैं आई।

धृष्टबुद्धि

राजसभा से मदन आगया।

(विषया का प्रवेश)

विषया

भैया, क्या है ?

मदन

अब पिताजी की तबीयत कैसी है ?

विषया

अच्छी है। तुम्हारे जाने के थोड़ी देर पीछे वे प्रकृतिस्थ हो गये थे। पर माँ ने आग्रह करके उन्हें बाहर नहीं जाने दिया।

धृष्टबुद्धि

मदन ! अब मैं अच्छा हूँ। तुम मेरे पास आओ।

विषया

तुम्हें पिताजी बुलाते हैं। तब तक मैं भोजनों का आयोजन करती हूँ।

(जाती है)

मदन

(घूम कर)

आया पिताजी।

(जाकर और प्रणाम करके बैठता है)

धृष्टबुद्धि

अचानक मेरी तबीयत बिगड़ जाने का हाल महाराज से कह दिया था ?

मदन

हाँ, वे आपके लिए चिन्ता करते थे। उनकी आज्ञा से आपका काम आज मैंने ही किया।

धृष्टबुद्धि

अच्छा, कोई नई बात हो तो सुनाओ।

मदन

एक बात है। वह यह कि हमारे राज्य के अधीन चन्दनावती के राजा कुलिन्दक ने अपने किसी सगोत्रीय नवयुवक को गोद लेकर युवराज बनाया है। उसी के उपलक्ष्य में चन्दनावती से राजोपहार आया है। कुलिन्दक ने आपके लिए अलग उपहार भेजा है।

धृष्टबुद्धि

गोद लेने के विषय में कुलिन्दक ने मुझसे कहा था। किन्तु मैंने उस लड़के को नहीं देखा। उसका नाम क्या है?

मदन

भगवद्दत्त। किन्तु उसे कहते चन्द्रहास हैं।

धृष्टबुद्धि

(चौंक कर)

क्या चन्द्रहास?

मदन

हाँ, चन्दनावती से जो लोग आये हैं उनसे यही मालूम हुआ है।

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

इस बात ने तो मेरे मन में शंका उत्पन्न कर दी।

सुगामिनी

चन्द्रहास के रूप-गुण की बातें कैसी सुनी जाती हैं ?

मदन

उपहार लेकर जो अधिकारी वहाँ से आया है उसका तो यही कहना है कि—

(मालिनी)

परिचय उनका मैं दूँ भला ठीक कैसे ?
गुण गण मनुजों में दीखते हैं न वैसे ।
सुर वर उन जैसे श्रेष्ठ हों तो भले ही,
अतुल अवनि में हैं आप से आप वे ही ॥

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

अवश्य दाल में कुछ काला है ।

सुगामिनी

क्यों न हो, कभी कभी देवता भी मनुष्य रूप में पृथ्वी पर लीला किया करते हैं ।

(धृष्टबुद्धि से)

सुनते हो, हमारी विषया के लिए यह पात्र कैसा है ?

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

यद्यपि एक नाम के अनेक मनुष्य हुआ करते हैं पर

क्या ठीक है जो मुझे धोखा दिया गया हो। अच्छा, देख लूँगा।

सुगामिनी

चुप क्यों हो रहे ?

धृष्टबुद्धि

क्या कहूँ ?

सुगामिनी

जान पड़ता है, तुमने मेरी बात सुनी ही नहीं !

धृष्टबुद्धि

तुमने क्या कहा ?

सुगामिनी

चिन्ता के मारे तुम्हें अवकाश हो तो सुनो !

धृष्टबुद्धि

स्त्रियों की बुद्धि ! तुम अपने ही समान सबको निश्चिन्त समझती हो—

(आर्य्या)

स्त्री-चिन्ता की सीमा ,
बहुत हुई तो द्वार-देहली तक है ।
अगणित चिन्ताओं से ,
घूमा करता पुरुषों का मस्तक है !

सुगामिनी

इसी लिए पुरुषों को घर की चिन्ता न करनी चाहिए !

धृष्टबुद्धि

अच्छा, मैं सुनता हूँ। क्या कहती हो, कहो ?

सुगामिनी

यही कहती हूँ कि विषया के योग्य चन्द्रहास कैसा पात्र है ?

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

विषया के योग्य तो नहीं, विष के योग्य अवश्य है।

(प्रकट)

देखा जायगा। अपने की तो सभी बड़ाई करते हैं। बिना देखे निश्चय नहीं किया जा सकता।

सुगामिनी

यही तो मैं कहती हूँ। पर विलम्ब न करना चाहिए। क्योंकि अच्छे वर के लिए सभी उद्योगी रहते हैं।

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

मुझे चन्द्रहास को देखना ही है। इसका भी मन रखलूँ।

(प्रकट)

अच्छी बात है। तुम कहती हो तो राज्यनिरीक्षण करने के बहाने जाकर मैं उसे देख आऊँगा।

सुगामिनी

यदि किसी बहाने उसे यहीं बुला लेते तो मैं भी देख लेती।

धृष्टबुद्धि

मैं देखकर जैसा उचित समझूँगा, करूँगा।

द्वितीय दृश्य

चन्दनावती का राजभवन

चन्द्रहास और सुलक्षण

चन्द्रहास

सखे सुलक्षण ! मेरे युवराज बनाये जाने पर तुम मुझे जो बार बार बधाई देते हो इससे मुझे बड़ा सङ्कोच होता है। मुझे अपने पद का निर्वाह सहज नहीं जान पड़ता। कारण, राजकुल के कर्तव्य बड़े ही कठिन हैं।

(नेपथ्य में)

यदि वे कर्तव्य कठिन हैं तो उनका भार मुझे देकर निश्चिन्त हो जाइए।

सुलक्षण

चौंक कर)

अरे, माधव आ गया।

(माधव का प्रवेश)

माधव

जय हो। कहिए क्या हो रहा है ?

सुलक्षण

आप काहे का भार लेने चले थे ?

माधव

जिन कर्तव्यों की कठिनता के विषय में कुमार कह रहे थे।

सुलक्षण

कुमार तो कह रहे थे कि आज दोपहरी में सिंह का शिकार खेलने चलेंगे।

चन्द्रहास

(मुसकरा कर)

ठीक है।

माधव

अरे बाप रे ! इसका भार तो मैं न ले सकूँगा। मैंने तो समझा था कि कुमार अपने पद के विषय में कह रहे हैं।

चन्द्रहास

अच्छा, तुझे अपने पद पर प्रतिष्ठित करके फिर मैं क्या करूँगा ?

माधव

बस, दायित्व के भार से हलके होकर आनन्द से घर घर अलख जगाने के सिवा और क्या है ! पर नहीं, आप मेरी ओर से स्वच्छन्दतापूर्वक सिंहों का शिकार करते रहिएगा।

सुलक्षण

वाह ! युवराज तो आप बनना चाहते हैं पर सिंहों के शिकार से डरते हैं ! कभी युद्ध का काम पड़ा तो क्या होगा ?

माधव

अजी, मैं डरता थोड़े हूँ ? पर कौन जीव-हिंसा करे ? राजाओं का यह काम नहीं।

चन्द्रहास

भला, राजाओं के काम भी बतला दे।

माधव

आनन्दोपभोग करना। दण्ड-विधान करना। नये नये नियमों की कल्पना करना और—

सुलक्षण

और क्या ?

माधव

कहने से क्या, यदि कुमार मुझे अपने अधिकार दे दें तो, सच कहता हूँ, विश्वास कीजिए, एक ही साल में इतना धन इकट्ठा करूँ कि राज-कोष में रखने के लिए जगह न रहे ! अकेले कर-विभाग से ही इतनी आय हो कि—

सुलक्षण

एक ही वर्ष में प्रजा की सफ़ाई हो जाय। क्यों ?

माधव

प्रजा की सफ़ाई नहीं हो सकती। वह सैकड़ों तरह से कमाती खाती है। और कुछ भी हो, मैं तो राजसुख ही भोगूँगा।

सुलक्षण

तब तो तू खूब शासन करेगा !

चन्द्रहास

भाई, लोग जानते हैं कि राज-सुख कोई बड़ा भारी सुख है। पर यथार्थ में ऐसा नहीं। राजकुल असंख्य दायित्व भारों से दबा हुआ है। मैं तो यही कहूँगा कि—

(उपजाति)

सारी प्रजा का प्रहरी स्वरूप,
 है भारवाही बस भृत्य भूप।
उसे नहीं योग विराम का ही,
 है राज्यभोगी वह नाम का ही ॥

सुलक्षण

अहा ! कैसी उदार धारणा है !

माधव

यह बात है तब तो प्रजा के नाते आप मेरे भी—

(सिर खुजलाता हुआ)

समझिए कि—

चन्द्रहास

(मुसकराकर)

हाँ, हाँ, बोल, क्या करना होगा ?

माधव

अच्छा, देखें आप ही बताइए, मेरे मन में क्या है ?

चन्द्रहास

मैं तो समझता हूँ कि तेरी पीठ सहराती है और मुझे उसी पर दो चार घूँसे लगाने पड़ेंगे !

माधव

ख़ूब समझे । पर कहने में थोड़ी सी भूल हो गई । पेट की जगह पीठ और लड्डुओं की जगह आप घूँसे कह गये। पर इन बातों को रहने दीजिए । मैं अभी जाकर महाराज से कहता हूँ कि अपना घर सँभालिए । कुमार प्रजा से पूछ पूछ कर चलना चाहते हैं ।

चन्द्रहास

तो इसमें बुराई ही क्या है—

(भुजङ्गी)

प्रजा के लिए ही नृपोद्योग है,
इसी के लिए राज्य का योग है ।
प्रजाश्रेय ही सर्वदा ध्येय है,
इसी से प्रजा-सम्मति ज्ञेय है ॥

सुलक्षण

मैं तो यह जानता हूँ कि —

(भुजङ्गी)

धराधीश जो धर्म्म को जानते—
प्रजा के लिए आप को मानते ।
उन्हें पूछना क्या प्रजा से रहा ?
करेंगे स्वयं वे उसी का कहा ॥

माधव

आप दोनों एक ही पाठशाला के पढ़े हुए हैं न !

(देख कर)

अरे कौन है जो चोर की तरह ताक झाँक कर रहा है ?

(एक सेवक का प्रवेश)

सेवक

महाराज, मैं हूँ मङ्गल ।

माधव

मङ्गल है तो चला आ और शनि हो तो लौट जा ।

(सब हँसते हैं)

चन्द्रहास

मङ्गल ! क्या है ?

मङ्गल

कुमार की जय हो । कुन्तलपुर के मन्त्री महोदय हमारे

राज्य का निरीक्षण करने के लिए आने वाले हैं। अभी समाचार आया है। इसलिए महाराज ने आज्ञा दी है कि स्वागत की तैयारी की जाय।

माधव

लीजिए, मङ्गल शनि का समाचार ले ही आया! आप वन में शिकार के लिए जाना चाहते थे। पर अब कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। एक भालू यहीं आ रहा है। तैयार रहिए। तब तक मैं भी उदरदेव की उपासना करूँ। यह आफ़त टल जाय तो फिर बैठेंगे।

तृतीय दृश्य

चन्दनावती का राजप्रासाद

धृष्टबुद्धि

(आप ही आप)

निस्सन्देह यह वही है। यद्यपि अब यह बड़ा हो गया है पर मुझसे नहीं छिप सकता। वर्तमान चन्द्रहास उसी बालक चन्द्रहास का विकाश है। तो क्या ब्राह्मणों की बात सच होगी? कभी नहीं। ऐसा होही नहीं सकता। उस बार चन्द्रहास बच गया तो क्या हुआ? इस बार उसे कोई नहीं बचा सकता। चन्द्रहास नाम से मुझे घृणा है। मैं इसे मिटा कर ही रहूँगा। अपना मार्ग निष्कण्टक करने के लिए मैं क्या नहीं कर सकता?

(कुलिन्दक का प्रवेश)

कुलिन्दक

(स्वगत)

देखूँ इस एकान्त की भेट में मन्त्री क्या कहता है?

धृष्टबुद्धि

(देखकर, स्वगत)

कुलिन्दक आ गया। इसका यह पुत्र-सुख अब पूरा हो चुका, यहीं तक था। पर अपना काम निकालने के लिए मैं इसके साथ नम्रता का ही व्यवहार करूँगा।

(आगे बढ़कर)

आइए, नरनाथ ! आइए। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। बैठिए।

(दोनों बैठते हैं)

कुलिन्दक

कष्ट की क्या बात है ? आज बहुत दिनों में आप से मिल कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ है। किन्तु आपके आतिथ्य में मेरी ओर से अनेक त्रुटियाँ हुई होंगी। इसका मुझे खेद है। आशा है, मेरे हार्दिक भावों को जान कर आप उनकी ओर ध्यान न देंगे। क्योंकि—

(वसन्ततिलक)

हैं मानते अतिथि को निज पूज्य आर्य्य,
होते नहीं त्रुटि-विहीन परन्तु कार्य्य।
सद्भाव है सब अभाव तथापि धोता,
प्रेमोपहार सब साधन सिद्ध होता॥

धृष्टबुद्धि

यह आप क्या कहते हैं। भला आपकी ओर से त्रुटि हो सकती है? और, मैं तो जैसा महाराज कौन्तलप का हित-चिन्तक हूँ वैसा ही आपका। आप जैसे अधिकारी तो हमारे राज्य के गौरव हैं।

कुलिन्दक

यह आपका अनुग्रह है। कहिए, महाराज तो कुशल-पूर्वक हैं।

धृष्टबुद्धि

शरीर से तो कुशलपूर्वक ही हैं किन्तु—

कुलिन्दक

निस्सन्देह यह बड़ी ही शोचनीय बात है कि इतने बड़े राज्य के अधीश्वर होकर भी महाराज संसार में एकाकी हैं! मैं भी जैसा आया था वैसा ही जा रहा हूँ। किसी प्रकार इस वृद्ध वसय में पिण्ड-प्राप्ति की व्यवस्था कर ली है।

धृष्टबुद्धि

आपने यह बहुत अच्छा किया। संसार में जो अपना हो-जाय वही अपना है। कुमार को देख कर मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ। यह आपका सौभाग्य है कि आपको ऐसा गुणवान् पुत्र प्राप्त हुआ।

कुलिन्दक

सब भगवान् की कृपा का फल है—

(शिखरिणी)

करे जो चाहे सो वह, कुछ उसे दुष्कर नहीं ;
वही कर्ता भी है अखिल कृतियों का सब कहीं ।
सदा लीलाकारी स्ववश विभु विख्यात वह है,
करेगा कैसे, क्या, कब, वह, किसे ज्ञात यह है ॥

परन्तु साथ ही यह भी है—

करेगा जो कर्ता अनुचित न होगा वह कभी,
इसी में से होंगे प्रकटित हमारे शुभ सभी ।
पिता से पुत्रों का अनहित कभी सम्भव नहीं,
विचारें वे वैसा भ्रमवश उसे यद्यपि कहीं ॥

धृष्टबुद्धि

निस्सन्देह यही बात है । यही सोच कर महाराज कौन्तलप भी सन्तोष किए हैं ।

कुलिन्दक

क्यों न हो, वे सब जानते हैं । इस विषय में कुछ उद्योग भी किया गया है ?

धृष्टबुद्धि

हाँ, विचार हो रहा है ।

कुलिन्दक

बड़ी अच्छी बात है। मैंने सुना है, आयुष्मान् मदन पर भी वे पुत्र की भाँति स्नेह करते हैं।

धृष्टबुद्धि

उनका अनुग्रह है। हम लोग तो उन्हीं के हैं। और, जब जो कुछ होगा आप ही लोगों की सम्मति से होगा।

कुलिन्दक

मैं कोई दूसरा थोड़े ही हूँ ? आशा है, मेरी तरह चन्द्रहास भी उनका शुभैषी रहेगा।

धृष्टबुद्धि

(स्वगत)

जीता रहेगा तब न ?

(प्रकट)

इसका कहना ही क्या। इसका तो मुझे पूर्ण विश्वास है। मेरी इच्छा है कि दो चार दिन यहाँ ठहर कर आप के सत्सङ्ग का लाभ उठाऊँ और फिर आपके शासन की श्रेष्ठता का वृत्तान्त विशेष रूप से महाराज को जाकर सुनाऊँ।

कुलिन्दक

यह भी आपका अनुग्रह है। मुझे भी आप के सत्सङ्ग का अवसर मिलेगा। क्योंकि—

(इन्द्रवंशा)

सत्सङ्ग संसार-समुद्र-सेतु है,
सत्सङ्ग ही मोद-विनोद हेतु है।
सत्सङ्ग-सा लाभ न और अन्य है,
पाता उसे जो वह धन्य धन्य है॥

धृष्टबुद्धि

मेरे लिए भी यही बात है। परन्तु—

कुलिन्दक

परन्तु क्या ? यहाँ भी आप का घर है।

धृष्टबुद्धि

सो तो है ही। किन्तु एक ऐसा आवश्यक कार्य आपड़ा है जिसकी सूचना मुझे शीघ्र ही महाराज को देनी चाहिए।

कुलिन्दक

क्या पत्र भेजने से काम नहीं चल सकता ?

धृष्टबुद्धि

(सोचकर)

चल सकता है। किन्तु वह पत्र उसी से हाथ भेजा जा सकता है जिस पर पूरा विश्वास किया जा सके।

कुलिन्दक

तो जिसे आप इस योग्य समझें उसी के हाथ पत्र भिजवा दिया जाय।

धृष्टबुद्धि

जिन्हें मैं इस योग्य समझता हूँ उन्हें कष्ट देने को जी नहीं चाहता ।

कुलिन्दक

यदि हम लोगों में से कोई जा सकता हो तो सङ्कोच करना व्यर्थ है । महाराज कौन्तलप का काम हमारा ही काम है

धृष्टबुद्धि

ठीक है । पर थोड़ी सी बात के लिए कुमार को कैसे कष्ट दूँ ?

कुलिन्दक

यह कष्ट है कि चन्द्रहास के लिए आनन्द की बात है । आप उस पर ऐसा विश्वास रखते हैं इसके लिए मैं आप का कृतज्ञ हूँ ।

धृष्टबुद्धि

आपकी इस कृपा के लिए धन्यवाद ।

कुलिन्दक

इसकी क्या आवश्यकता ? आप यों ही हमारे मान्य हैं तिस पर इस समय अतिथि हैं । आपको सन्तुष्ट करना हमारा परम कर्तव्य है ।

धृष्टबुद्धि

मैं परम सन्तुष्ट हुआ। बात बड़ी गोपनीय थी; इसी से ऐसा करना पड़ा। बस, मदन तक पत्र पहुँचा देने से ही काम हो जायगा।

कुलिन्दक

अच्छी बात है। आप पत्र लिख रखिएगा मैं सबेरे चन्द्रहास को भेज दूँगा।

धृष्टबुद्धि

तो अब इस समय आपको अधिक कष्ट कैसे दूँ?

कुलिन्दक

हाँ, आपको कष्ट हो रहा है। आराम कीजिए।

(सादर धृष्टबुद्धि को बिदा करके)

इस बार तो मन्त्री का व्यवहार बहुत ही विनय-पूर्ण दिखाई देता है। सम्भव है, चन्द्रहास के भेजे जाने में भी कोई भेद हो। पीछे सब मालूम हो जायगा—

(वसन्ततिलक)

आत्मानुकूल पहले सब को बनाते—
पीछे प्रयोजन सुधीजन हैं जनाते।
अर्थी इसी नियम से कृतकार्य्य होते,
जैसे फलेच्छु जल देकर बीज बोते॥

तो चलूँ मैं भी चन्द्रहास को सब बातें समझा दूँ।

——·——

चतुर्थ दृश्य

चन्दनावती

चन्द्रहास, सुलक्षण और माधव

चन्द्रहास

सम्भव है, मदन के अनुरोध से मुझे वहाँ एक आध दिन रुकना पड़े। क्योंकि कहीं जाना अपने अधीन होता है पर वहाँ से आना दूसरे के अधीन। इसलिए—

(आर्य्या)

मेरी अनुपस्थिति में

तुम मेरे ही अन्य रूप सम रहना।

जो करना हो करना

तथा जहाँ जो कुछ कहना हो कहना ॥

सुलक्षण

आप यहाँ से निश्चिन्त रहें। सब काम होते रहेंगे।

माधव

अच्छा, सुलक्षण जी तो आपके अन्य रूप होकर रहेंगे। और सुलक्षण जी का अन्य रूप होकर कौन रहेगा ?

सुलक्षण

तू जो है।

माधव

बस मरे तो हम !

चन्द्रहास

सो कैसे ?

माधव

ऐसे कि सुलक्षण जी तो आपकी जगह हो गये और मैं सुलक्षण जी की जगह होगया। फिर माधव कहाँ रहा ?

चन्द्रहास

अच्छा, यह तुझी पर छोड़ा। तू जिसे चाहे अपनी जगह रख लेना।

माधव

पर मेरे जोड़ का महापुरुष कहाँ मिलेगा ?

चन्द्रहास

सचमुच तू बड़ा महापुरुष है।

माधव

फिर इतने झगड़े का काम ही क्या, मैं एक सहज उपाय बताऊँ।

चन्द्रहास

वह क्या ?

माधव

यह कि मन्त्री का पत्र आप मुझे दे दें। मैं एक दौड़ में जाकर उसे मदन के सिर मारूँ। आप इधर उधर घूम कर आ जाइए।

चन्द्रहास

मेरे वहाँ जाने में क्या हानि है ?

माधव

कुन्तलपुर बड़ा विकट स्थान है।

चन्द्रहास

कैसा विकट ?

माधव

सुनिये—

(शिखरिणी)

बिना प्रत्यञ्चा के विषम धनुषों से शर कहीं—
चलाये जाते हैं, हृदय बिंधता है तनु नहीं।
कहीं सिंहारोही द्विरद करते आक्रमण हैं,
भरे काँटों ही से सरल पथिकों के भ्रमण हैं !

समझे ?

चन्द्रहास

(मुसकराकर)

तो तो मैं अवश्य ही जाऊँगा। वीर समर से डर गये तो वीर ही क्या रहे !

माधव

हुँ, पर याद रखिए—

(भुजङ्गी)

सभी वीरता भूल जाती वहाँ,
पड़ी धीरता धूल खाती वहाँ,
वहाँ जावगे तो ठगे जावगे,
अजी, और के और हो आवगे !

चन्द्रहास

मित्र, दुर्बल मन के लिए तो ऐसी आशङ्काएँ सभी कहीं हैं।

सुलक्षण

इसमें क्या सन्देह ? किन्तु आप जैसों के लिए कहीं नहीं।

माधव

मैं तो फिर कहूँगा कि—

(भुजङ्गप्रयात)

लताएँ वहाँ चित्त को हैं फसातीं,
कभी हैं खिझातीं, कभी हैं हँसातीं,
खुली खेलती हैं, पिकों को खिलातीं,
भुला के नये भृङ्ग को हैं हिलातीं ॥

चन्द्रहास

(हँसकर)

आज तो तू कवि ही बन गया ! कह तो वहाँ से तेरे लिए एक लता लेता आऊँ ?

माधव

खैर, मेरे लिए या अपने लिए ! पर देखिए, ऐसी लाना जो मुझे अपने कर-पल्लवों से मीठे फल खिलाती रहे। महारानी ने तो आज आपको आशीर्वाद दिया ही है कि शीघ्र ही अनुरूप पत्नी प्राप्त हो। मुझ ब्राह्मण का भी यही आशीर्वाद समझिए।

(एक सेवक का प्रवेश)

सेवक

कुमार की जय हो। घोड़ा तैयार है।

सुलक्षण

तो अब प्रस्थान कीजिए। इसकी बातें तो कभी पूरी न होंगी। धूप चढ़ रही है।

माधव

(ऊपर देखकर)

परन्तु छाया करने के लिए बादल भी तो हो रहे हैं। भाग्यशालियों की सभी अनुकूलता करते हैं। अच्छा तो—

(उपेन्द्रवज्रा)

कहीं वहीं भूल न जाइएगा,
पधारिए, सत्वर आइएगा।
बनें स्वयं सत्पथ सौख्यकारी,
सुकर्म्म हों विघ्न-विपत्तिहारी ॥

(शिखरिणी)

द्रुमों के नीचे ही अब रह गई छाँह वन में,
नहीं हैं उत्साही पथिक, पशु, पक्षी गमन में।
स्वयं ही आजाती इस समय है श्रान्ति मन में,
प्रतापी पूषा भी कुछ अचल-सा है गगन में !

इसलिए, इस समय मदन को कष्ट देना उचित न समझ कर नगर के बाहर उसी के इस उद्यान में ठहर जाना मैंने उचित समझा। मेरा शरीर भी कुछ क्लान्त-सा हो रहा है। यद्यपि मार्ग में मुझे कुछ श्रम नहीं जान पड़ा पर इस शिथिलता का कुछ कारण होना ही चाहिए। हाँ, जान लिया—

(उपजाति)

उत्साह कार्य्य श्रम को दबाता,
शरीर मानों बन यन्त्र जाता।
हाँ, पूर्ण होने जब कार्य्य आता,
सन्तोष शैथिल्य अवश्य लाता॥

नियति

यह और कुछ नहीं, मेरी एक नई लीला का सूत्रपात है।

चन्द्रहास

पर क्या मेरे शरीर में आज ऐसी ही शिथिलता है ? मैं ठीक नहीं कह सकता। जी चाहता है, कुछ देर विश्राम करूँ। यह समय और स्थान भी इसके लिए उपयुक्त है।

(इधर उधर देखकर)

अहा ! कैसा अच्छा दृश्य है—

(प्रमिताक्षरा)

फल-फूल और बहु पत्र भरे,
निज मातृभूमि पर छत्र धरे।
खग-गीत-पूर्ण तरु ये खिल के,
अनुलाप-सा कर रहे मिल के !

उपवन भी मनोविनोद के लिये एक अपूर्व स्थान होता है। उस ओर वह कुञ्ज कैसा मनोहर है—

(मालिनी)

अति ललित लता है मण्डपाकार छाई,
गिर कर सुमनों ने सेज-सी है बिछाई।
किसलय-कर मानों आगतों को बुलाते,
हृदय-नयन दोनों हैं यहाँ तृप्ति पाते ॥

तो चलूँ, थोड़ी देर वहीं विश्राम करूँ।

नियति

यथेष्ट विश्राम कर। तब तक मैं दूसरा काम करती हूँ।

द्वितीय दृश्य

उसी उद्यान का दूसरा भाग

विषया, विजया, मल्लिका, सुशीला और सरला

सखियों का गान

(गीत)

कुसुमित हरित भरित उपवन है,
सुरभित मलयज मृदुल पवन है।
पिककुल-कलकल-कलित गगन है,
ललित समय कृत विलुलित मन है॥

विजया

सखी विषया! देख, तू आना नहीं चाहती थी। यद्यपि वसन्त बीतने पर है परन्तु इस उद्यान में उसका पूरा प्रभाव प्रकट हो रहा है!

विषया

सखी! सचमुच आज मेरी इच्छा न थी। पर तूने न छोड़ा। तुझे उपवन में घूमना बहुत पसन्द है। मुझे भी भवानी-पूजन का अवसर मिल गया।

विजया

(मुसकरा कर)

आज भवानी से मनमाना वर माँग लेना।

विषया

बस, बहुत न बोल, नहीं तो बेचारी कोकिलाएँ चुप हो जायँगी !

विजया

कोकिलाओं पर ऐसी दया थी तो तू ही न बोलती ?

विषया

मैं क्या अपने विषय में कहती हूँ ? चुप तुझे रहना चाहिए जो अपने कलकण्ठ से उन्हें लज्जित करने चली है !

सरला

और, मैं तुम दोनों से ही कहती हूँ। जब तुम दोनों ही मौन रहो तभी बेचारी कोकिलाओं का कल्याण है !

सुशीला

सखी, तू भूलती है। केवल न बोलने से ही क्या होता है ? उद्यान की लताएँ तो फिर भी लज्जित ही रहेंगी—

(सवैया)

करतीं जब आकर शोभित ये

इस लौकिक नन्दन की गलियाँ।

छद देख सु-पल्लव हैं कँपते
रद देख नहीं खिलतीं कलियाँ !
उड़ते अलि हैं दृग देख तथा
मुँह ही तकती सुमन-स्थलियाँ ।
चलती फिरती अवलोक इन्हें
लचतीं ललिता लतिकावलियाँ !

विषया

(आक्षेप से)

मल्लिका ! तू भी कुछ कहले । सरला और सुशीला ने तो अपनी अपनी लीला दिखादी, तू क्यों रह जाय !

मल्लिका

मैं क्या तुच्छ लताओं को लेकर तुम्हें उपवन में घूमने से रोक सकती हूँ ?

(त्रोटक)

लतिकावलियाँ सिर कूट उठें,
फल-फूल तथा दल टूट उठें ।
छवि-पुञ्ज चतुर्दिक छूट उठें,
पर लोलुप भृङ्ग न लूट उठें !

इसलिए इतना अवश्य कहूँगी कि यहाँ पर सँभल सँभल कर घूमना चाहिए ।

विजया

तेरी बात भी सुनली । पर यह लताओं वाली उपमा क्या

ठीक है ? वे तो अभी हमारी सखी पर उलटी हँस रही हैं। क्योंकि वे सभी अपने अपने विटपवरों से लिपट रही हैं और हमारी सखी अभी तक—

विषया

(बीच में)

यह तो मेरे मिस से तू अपनी दशा का वर्णन कर रही है। किसी ने ठीक कहा है कि मन की बात कभी न कभी मुँह से निकल ही जाती है। सो तू इसके लिए चिन्ता न कर। तेरी यह इच्छा भी पूरी हो जायगी।

विजया

पहले तू तो अपनी इच्छा पूरी करले फिर मुझे आशीर्वाद देना !

सुशीला

तुम्हें यह मालूम नहीं कि इनकी यह इच्छा शीघ्र ही पूरी होने वाली है।

विजया

क्या सच ? मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं।

सुशीला

मैं क्या झूठ कहती हूँ ?

विजया

पात्र कौन निश्चित हुआ है ?

सुशीला

अभी पूरा निश्चय तो नहीं हुआ पर निश्चित-सा ही समझो।

विजया

फिर कुछ सुनूँ भी तो।

सुशीला

चन्दनावती के युवराज।

विजया

अच्छा, तभी धृष्टबुद्धि काका वहाँ गये हैं।

(विषया से)

क्यों सखी, मुझसे इतना भेदभाव! मुझसे छिपे छिपे ये बातें!

विषया

(स्वगत)

मेरा ऐसा भाग्य कहाँ? जब उनके सुने हुए गुणों का विचार करती हूँ तब यही प्रश्न उठता है कि क्या मैं उनके योग्य हो सकती हूँ? माँ ने पहले ही सुशीला से इस बात की चर्चा करके अच्छा नहीं किया।

(प्रकट)

सब झूठी बातें। सखी विजया! तू नहीं जानती, नई नई बातें बना कर खड़ी न कर दे तो यह सुशीला ही नहीं।

विजया

चल रहने दे। अब छिपाने की चेष्टा व्यर्थ है—

(त्रोटक)

छिपता जन का अनुराग नहीं,

दबती उर की वह आग कहीं ?

अब तू कुछ आप कहे न कहे,

मन बोल रहा, मुख मौन रहे !

विषया

(स्वगत)

ठीक है। जब से मैंने उनकी बड़ाई सुनी है तब से मेरे हृदय की न जानें क्या दशा होगई है !

(प्रकट)

सखी विजया ! तू भी बड़ी समझदार है ! चन्द्रमा को देखे बिना ही चकोरी अपने आप को भुलादे, ऐसा भी कहीं हो सकता है ?

विजया

परन्तु क्या तू यह नहीं जानती कि—

(आर्य्या)

कान पकड़ कर मन को

प्रियतम का गुण-जाल खींच लेता है।

सुरभित पवन मधुप को
सुमन-निकट समुपस्थित कर देता है।

(विषया लज्जित होती है)

सुशीला

वाह ! क्या कान पकड़े हैं ! प्रियतम का गुण-जाल सचमुच बड़ा ही दृढ़ है। तभी तो, देखो न, विषया रानी के कर्णमूल पर्य्यन्त लाल हो गये हैं !

(सब हँसती हैं)

विजया

सखी, क्या अप्रसन्न हो गई ?

सुशीला

अप्रसन्न होने की क्या बात है ? आज तुम जो कुछ माँगोगी वही मिलेगा। ये क्या अनुदार हैं ? देखती नहीं, मन का दान पहले ही कर चुकी हैं, तन भी दिया ही सा है !

विषया

ऐसा है तो फिर मुझसे माँगना ही क्या रहा ?

विजया

बहुत कुछ। तन मन देकर जो धन तेरे हाथ लगेगा उसी में से—

विषया

(बीच में)

चलो रहने दो। इसीलिए क्या तुम सब हठ करके मुझे यहाँ लाई थीं ? यही तुम्हारा भवानी-पूजन है !

(एक ओर जाती है)

सखियाँ

अरे सुनो, सुनो, अप्रसन्न क्यों होती हो ? लो, अब हम कुछ न कहेंगी। तुम्हीं मन ही मन जो चाहो कहती रहना। पर अभी से साथ क्यों छोड़ती हो ?

विजया

वह अब न सुनेगी। थोड़ी देर उसे भाव-राज्य में घूमने दो। आओ, तब तक हम इस उद्यान के सरोवर की शोभा देखें और थोड़ी देर वहीं बैठ कर विश्राम करें।

तृतीय दृश्य

वही उद्यान

विषया

(आप ही आप)

हाय ! अभी से यह दशा ! यद्यपि सखियों ने प्रेम-भाव से ही सब बातें कही हैं परन्तु मैं तो लज्जा के मारे मर-सी गई। फिर भी मन नहीं मानता। न जानें क्या होगा !

(नियति का प्रवेश)

नियति

बाले ! चिन्ता न कर। मैं तेरे साथ हूँ।

विषया

(द्रुतविलम्बित)

प्रणय-सिन्धु अपार अथाह है;
विरह-वाडव का अति दाह है।
हृदय ! वह्नि जले जल में जहाँ—
कुशल है फिर हाय ! वहाँ कहाँ ?

नियति

तेरे प्रेम-पारावार में रत्न ही रत्न हैं।

विषया

हे मन ! अधीर न हो—

(सवैया)

वह मार्ग अवश्य मनोरम है,
पर कण्टक-पूरित, दुर्गम है।
मिलता जल और विराम नहीं,
पड़ता अति घोर परिश्रम है॥
विचरे जितने जन हैं उसमें
सब का उपहास हुआ सम है।
मत जा उस ओर अरे मन ! तू,
वह स्वप्न, मृगाम्बु तथा भ्रम है॥

नियति

तेरे लिए वह स्वप्न नहीं, प्रत्यक्ष है। मृगतृष्णा नहीं, मान-सरोवर है। भ्रम नहीं, सत्य है। तू आनन्द से आगे बढ़।

विषया

(चलती हुई)

हे हृदय ! तू किसके पीछे चञ्चल घोड़े की तरह दौड़ता है ? तू ने उसे कभी देखा भी है जिसके लिए तू इतना आतुर हो रहा है ? माना कि केवल गुण सुन कर ही मन किसी को

देख लेता है, पर क्या आँखें भी किसी बिना देखे हुए के लिए इतनी आकुल हुआ करती हैं ? हाय ! इसका उत्तर तो बहुत ही सहज है—

(आर्या)

गुण स्मरण कर बहुधा
चित्र कल्पना-पट पर अङ्कित करके ।
अन्तर्दृष्टि-द्वारा
यह मन दर्शन करता है प्रियवर के ॥

नियति

मैं तेरी कल्पना को अभी प्रत्यक्ष किये देती हूँ ।

विषया

परन्तु हे मन ! क्या तू उनके योग्य है ? सुना है, मनुष्य रूप में वे कोई देवता हैं । न जाने तेरे जैसे कितने हृदय उन्हें आत्म-समर्पण करने के लिए तैयार होंगे ! न जाने कितने रूप-यौवन उनकी पूजा करने के लिए प्रस्तुत होंगे ! तेरी गणना ही क्या ? परन्तु तू क्या कहता है—

(अनुष्टुप्)

उनका हो चुका हूँ मैं, लोग जो कुछ भी कहें ।
वे भी सदैव मेरे हैं, किसी के क्यों न हो रहें !

नियति

तेरे ही, और किसी के नहीं ।

विषया

(इधर उधर देखती हुई)

क्या करूँ, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। दो दिन में मैं ही और की और होगई या सब दृश्य ही बदल गये ! जिधर देखती हूँ उधर एक अभाव-सा दिखाई देता है—

(वसन्ततिलक)

ऐसा अदृश्य कुछ है मन में समाया,
पूर्णाधिकार जिसने अपना जमाया।
तो और दृश्य फिर क्योंकर ठौर पावे ?
चाहे जिसे बस वही अब साथ लावे !

नियति

(अँगुली उठा कर)

वह देख उस अभाव की पूर्ति का पूरा प्रभाव !

(लतागृह में सोता हुआ चन्द्रहास दिखाई पड़ता है)

विषया

(देख कर)

अरे, इस लता-मण्डप में यह कौन है !

(पास जा कर)

(शार्दूलविक्रीडित)

सोता है वन-देव आप यह क्या प्रत्यक्ष हो कुञ्ज में !
होता है मन मग्न देख जिस को दिव्य प्रभा पुञ्ज में।

पाया क्या शिव को प्रसन्न करके कन्दर्प ने गात्र है ?
आया मित्र वसन्त के घर वही जो प्रेम का पात्र है !

नियति

यह तेरी कल्पित मूर्ति की सजीव प्रतिमा है ।

विषया

(मोहित हो कर)

ऐसा रूप, ऐसा सौन्दर्य्य मनुष्य-कुल में तो कभी देखा नहीं; निश्चय ये कोई देवता हैं इनकी सुप्त शोभा देख कर ही विदित होता है कि इनके जागने पर—

(वसन्ततिलक)

प्रत्यक्ष भूमि पर चन्द्र-विकास होगा,
आकाश के विभव का उपहास होगा ।
सौन्दर्य्य का प्रकट पूर्ण विलास होगा,
होंगे जहाँ यह वहीं वर-वास होगा ॥

नियति

यह सब तेरे ही हृदय में होगा ।

विषया

परन्तु इस मनोहारिणी मूर्ति को देख कर मेरा मन क्यों आप ही आप खिंचा जाता है ? क्या वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गया ? अथवा ये वही हैं ?

(मालिनी)

प्रथम कुछ जिसे था कल्पना ने दिखाया
फिर जब तब था जो स्वप्न में दृष्टि आया ।
हृदय ! यह वही क्या सामने आ गया है ?
तुझ पर यह कैसा मोह-सा छागया है ?

नियति

आँखें यदि अपने इष्ट जन को पहचान लें तो आश्चर्य ही क्या ।

विषया

(वसन्ततिलक)

ये देख के कुछ निमीलित नेत्र काले—
होंगे मदान्ध सहसा सब दृष्टिवाले ॥

परन्तु—

श्वास-क्रिया शयन की यह देख पावें—
तो एक बार मृत क्या फिर जी न जावें !

नियति

सचमुच प्रेम की महिमा बड़ी विचित्र है ।

विषया

ये सुन्दर ही नहीं, वीर भी जान पड़ते हैं । पास ही तलवार रक्खी है । अरे, इसकी मूँठ पर यह क्या लिखा है—च—न्द्र—हा—स !

नियति

हाँ, यह तेरा चितचोर चन्द्रहास ही है।

विषया

(भुजङ्गी)

अरी दृष्टि ! तू खोजती थी जिसे—
यहीं है यही, देख ले तू इसे।
यहाँ कौन है, हाय ! सङ्कोच क्यों ?
मिलेगा भला योग ऐसा किसे !

परन्तु क्या यह शरीर पृथ्वी पर सोने योग्य है ? फिर कोमल शय्या किस के लिये है ? हाथ से ही तकिये का काम लिया गया है। इसी से सिरपेच ढीला पड़ गया है। अरे, सिर के पास यह क्या पड़ा है ? यह कोई पत्र-सा जान पड़ता है। हैं, इस पर तो भैया का नाम लिखा है ! ये अक्षर भी पिता जी के लिखे हुए मालूम होते हैं ! यह क्या रहस्य है ? हे हृदय ! धीरज धर। मैं तेरी उत्कण्ठा शान्त करूँगा। विवेक ! तू क्यों आगा पीछा करता है ? मुझे भी तो इसके देखने का अधिकार है।

नियति

तू निस्सङ्कोच पत्र को उठा कर पढ़। विवेक भी तो मेरे ही वश में है।

विषया

(धीरे से पत्र को उठा कर और खोल कर)

यह तो हमारी साङ्केतिक लिपि है ! अच्छा,

(पढ़ती हुई)

"प्रिय वत्स मदन !

चन्द्रहास मेरा पत्र लेकर तुम्हारे पास जाता है। तुम अविलम्ब इसे विष या कनी दे देना। किसी विशेष कारण से मैंने यह व्यवस्था की है।

धृष्टबुद्धि"

(दुःख से)

हाय ! हाय ! यह क्या लिखा है ? हे भगवन् ! पिताजी को यह क्या सूझी है ? क्या मेरे भाग्य में विवाह के पहले ही विधवा होना लिखा है ! नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। पिताजी ऐसा गर्हित कार्य्य कभी नहीं कर सकते।

नियति

वह कर तो कुछ नहीं सकता पर करना चाहता है।

विषया

मैं तो जानती हूँ कि भूल से वे कुछ का कुछ लिख गये हैं। कुछ भी हो, मैं इनकी रक्षा करूँगी। पर कैसे क्या करूँ ? (सोच कर)

विष या कनी। लाओ इस कनी को मैं चाट लूँ। यहाँ केवल विषया रहने दूँ !

नियति

बस, बहुत ठीक। ऐसा होने से चन्द्रहास भी बच जायगा और तू भी सनाथ हो जायगी।

विषया

(ऊपर देख कर)

(आर्य्या)

सुर-गण ! तुम साक्षी हो
क्या करती हूँ, नहीं जानती हूँ मैं ।
पर जो कुछ करती हूँ
उसको निज कर्तव्य मानती हूँ मैं ॥

नियति

मैं देखती हूँ, तू अपना काम पूरा कर ।

विषया

(आँखों के कज्जल से कनी को मिटा कर)

अब ठीक हो गया । यहाँ पर यही शङ्का हो सकती है कि मुझे इस तरह अचानक इनके हाथ सौंपने की व्यवस्था क्यों की गई ? पर लिखावट ऐसी है कि काम होने में बाधा नहीं ।

(पत्र को बन्द करके उसी तरह रख देती है)

(नेपथ्य में)

(गान)

भ्रमरी ! इस मोहन मानस के
बस मादक हैं रस-भाव सभी ।
मधु पीकर और मदान्ध न हो
उड़जा अब है कुशलत्व तभी ॥

पड़ जाय न पङ्कज-बन्धन में
निशि यद्यपि है कुछ दूर अभी।
दिन देख नहीं सकते सविशेष
किसी जन का सुख-भोग कभी॥

विषय।

(चौंक कर)

अरे क्या सखियों ने मुझे देख लिया? अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं। परन्तु मेरे पैर तो यहीं जकड़-से गये हैं—

(स्वागता)

हे विमुग्ध मन! यों मत मोहै,
रोक लोभ यह प्रस्तुत जो है।
ईश हस्तगत है अभिलाषा,
तू भविष्य-सुख की रख आशा।

(मुड़ मुड़ कर देखती हुई जाती है)

नियति

(चन्द्रहास को देखती हुई)

अब तू भी अपनी स्वप्नमयी निद्रा को छोड़। तेरा मार्ग निष्कण्टक है।

चन्द्रहास

(सहसा जाग कर)

मैं कहाँ हूँ

(इधर उधर देख कर)

यह तो वही उद्यान और वही लता-मण्डप है। तो क्या मैं अभी स्वप्न देख रहा था ?

नियति

हाँ, पर वह स्वप्न कोरा स्वप्न ही न था।

चन्द्रहास

मैंने क्या देखा कि मैं एक भीषण वन में फँस गया हूँ। मेरा मार्ग काँटों से भरा हुआ है और उस पर मेरे सामने एक भयङ्कर बाघ गरज रहा है।

नियति

ठीक है। धृष्टबुद्धि यथार्थ में एक भयङ्कर बाघ ही है।

चन्द्रहास

उसे देख कर मेरे हाथ पैर अवसन्न हो गये। चारों ओर अँधेरा छा गया। परन्तु थोड़ी ही देर पीछे एक दिव्य ज्योतिर्मयी बाला वहाँ आ पहुँची। उसके प्रकाश से सारा अन्धकार मिट गया। वह विकट वन मानों नन्दन कानन बन गया! मेरे मार्ग में काँटों की जगह फूल बिछ गये! सुन्दरी ने अपना करकमल मेरी ओर बढ़ा दिया और मैं उसे पकड़ कर उचित मार्ग पर आ गया!

नियति

ठीक है।

चन्द्रहास

तब वह किन्नरकण्ठी मेरी ओर देख कर मानों अमृत टप-काती हुई बोली—डरो नहीं, धैर्य्य धरो। उसी समय प्रतिध्वनि हुई—डरो नहीं। सुन्दरी ने फिर कहा—सभी कहीं श्रीहरि हैं। फिर प्रतिध्वनि हुई—सभी कहीं। वे बातें अब भी मेरे कानों में गूँज रही हैं—

(वंशस्थ)

डरो नहीं, धैर्य्य धरो, डरो नहीं,
सभी कहीं श्री हरि हैं, सभी कहीं।

इसके बाद वह सोने की प्रतिमा सहसा अन्तर्द्धान हो गई।

अहो! यहाँ आकर मैं छला गया,
कहाँ न जानें मन भी चला गया?

नियति

वही तेरा मन ले गई है। पर तू छला नहीं गया।

चन्द्रहास

निस्सन्देह मेरा मन उसी के साथ चला गया—

(सवैया)

दिखला कर सम्मुख दिव्य कला
जिसने रस-रूप-विकास किया।

चमकी फिर लोप हुई सहसा
चपला-सम लोल विलास किया।
कमला-सम थी वह कौन भला ?
उसने यह क्या उपहास किया ?
पहले मुझको निज दास किया
फिर दूर, निराश, उदास किया !

नियति

निराश और उदास मत हो। उसे अपने पास ही समझ।

चन्द्रहास

(कुछ सँभल कर)

परन्तु वह तो स्वप्न था। हाय ! ऐसा स्वप्न मुझे क्यों हुआ ? और हुआ तो फिर सच्चा क्यों न हुआ ? क्या मेरे मन को व्याकुल करने के लिए ही इस माया का आविर्भाव हुआ था ?

नियति

यह पीछे मालूम होगा।

चन्द्रहास

(सामने पड़े हुए पत्र को उठा कर)

यह तो मन्त्री का वही पत्र है। जान पड़ता है, सोते में खिसक पड़ा है। हाय ! मुझ से ऐसा प्रमाद क्यों हुआ ?

नियति

मेरे प्रभाव से।

चन्द्रहास

(इन्द्रवज्रा)

निर्दोष हूँ मैं, यह क्या बताऊँ,
स्वीकार है जो कुछ दण्ड पाऊँ।
देना विधे ! साक्ष्य परन्तु मेरा,
था सर्वथा प्रेरक भाव तेरा ॥

नियति

एक बार नहीं, सौ बार। तू निश्चिन्त रह।

चन्द्रहास

तो चलूँ, अब शीघ्र ही मदन से मिलूँ।

(दीर्घ निःश्वास लेकर)

(उपजाति)

न तो मिली हा ! वह स्वप्न-सम्पदा,
चिन्ता रहेगी जिसकी मुझे सदा।
न कार्य्य में पूर्ण सतर्कता रही,
क्या आज मेरा भवितव्य था यही !

नियति

तेरा भवितव्य आज जैसा था वैसा किसी का न होगा।

चतुर्थ दृश्य

कुन्तलपुर, धृष्टबुद्धि का मकान

मदन

(आप ही आप)

अहा !

(वसन्ततिलक)

श्री चन्द्रहास अवनीतल चन्द्र ही है,
वाणी रसाल उसकी मृदु-मन्द्र ही है।
सर्वस्व है चित-चकोर उसे चढ़ाता,
त्यों प्रेम का वह नवाङ्कुर है बढ़ाता॥

निस्सन्देह चन्द्रहास कोई अलौकिक व्यक्ति है। क्या रूप और क्या गुण, दोनों ही बातों में वह अद्वितीय है। शील और सौजन्य, विनय और वीर्य्य, विद्या और बुद्धि सभी बातें उसमें विलक्षण हैं। सद्भाव का तो मानों वह स्वरूप ही है। थोड़ी ही देर में उसने मुझे अपना चिर-परिचित-सा बना लिया! विषया के लिए पिताजी ने बड़ा ही उपयुक्त वर खोजा। पर इस प्रकार विवाह की व्यवस्था क्यों की गई, यह मेरी समझ में न

आया। कोई गूढ़ कारण अवश्य होगा। उनके लिखने से भी यही बात मालूम होती है। जो हो, मुझे शीघ्र ही उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। विशया के विवाह की बात चला कर विलासिनी मुझे छेड़ा करती है। इसलिए उसे दिखा दूँ कि विषया के लिए हम लोगों ने कैसा पात्र निश्चित किया है।

(घूम कर देखता हुआ)

(द्रुतविलम्बित)

सरस जीवन है जिससे अहा!
भुवन नन्दन कानन हो रहा।
सतत चन्द्रकला सम हासिनी—
यह खड़ी वह प्राण-विलासिनी॥

(विलासिनी दिखाई देती है)

मदन

(पास जाकर)

प्रिये! क्षमा करना, मैंने अचानक आकर तुम्हारे काम में विघ्न किया!

विलासिनी

(मुसकरा कर)

क्षमा क्या सहज ही मिल जाती है? पहले कुछ अनुनय-विनय तो करो!

मदन

(मुसकरा कर)

अनुनय-विनय कैसे की जाती है ? सिखा दो तो वह भी करूँ ।

विलासिनी

इस काम में मेरी ननद रानी बड़ी निपुण हैं । जाकर उन्हीं से सीख आओ। आज वे अनुनय-विनय के वश होकर तुम्हारे उद्यान में गई थीं । जान पड़ता है, वहाँ उन्हें वसन्त की हवा लग गई है । इधर तुम भी वसन्त के मित्र हो, इसलिए शीघ्र ही उनके विवाह का प्रबन्ध करो । देखते नहीं—

(आर्य्या)

तन-मन की चञ्चलता
हुई सजगता में विशेष परिणत है ।
है नव दीप्ति दृगों में
किन्तु दृष्टि संकुचित और कुछ नत है ॥

मदन

तुम विषया को लेकर मुझ से बहुत परिहास किया करती हो । देखो, हमने उसके लिए योग्य वर खोज लिया है ।

विलासिनी

(आग्रह से)

सच ?

मदन

हाँ ।

विलासिनी

बड़ी बात हुई । भाई ही ठहरे, बहन का विरह कब तक देख सकते थे !

मदन

इन बातों को रहने दो । देखो, यह पिता जी का पत्र आया है ।

(पत्र देता है)

विलासिनी

(पढ़कर)

अरे, यह तो विवाह भी अभी हो जायगा ! इसका कारण ?

मदन

मेरी समझ में भी नहीं आया । पर जब पिता जी की ऐसी आज्ञा है तब कोई गूढ़ कारण अवश्य होगा । जो हो, मैं माँ को सब हाल सुना दूँ । जहाँ तक हो सके शीघ्रता होनी चाहिए ।

विलासिनी

अच्छी बात है । मैं भी नन्दन रानी के पास हो कर आती हूँ । पर यह तो बतलाओ आर्य्य चन्द्रहास जी कैसे हैं ?

मदन

देखोगी तब जानोगी । पर कहीं मुझे न भूल जाना !

विलासिनी

कुछ चिन्ता नहीं। ऐसा हुआ तो तुम्हें दूर न जाना पड़ेगा!

मदन

मेरे तो तुम जैसी तुम्हीं हो।

(जाता है)

विलासिनी

(आप ही आप)

मैं भी ननद रानी को सब हाल सुना दूँ। थोड़ी देर विनोद ही होगा। अच्छा, वे किधर हैं?

(घूम कर देखती हुई)

अहा! वह देखो, चिन्तित भाव से कैसी मूर्ति-सी बनी बैठी हैं!

(विषया दिखाई देती है)

विषया

(आप ही आप)

मैंने उन्हें यहाँ आते हुए तो झरोखे में से देख लिया है। परन्तु फिर क्या हुआ, यह जानने के लिए मेरा मन आतुर हो रहा है।

विलासिनी

(पास जाकर)

ननद रानी!

(भुजङ्गप्रयात)

बनी मूर्ति-सी सोचती हो यहाँ क्या ?
तुम्हें ध्यान भी है कि होता कहाँ क्या !
लगी दीठ-सी दीखती है किसी की,
गई थी जहाँ देख आई वहाँ क्या ?

विषया

(स्वगत)

हाय ! हाय ! क्या सब भेद खुल गया ! हे भगवान् ! अब क्या होगा ?

(प्रकट)

भाभी ! तुम क्या कहती हो ?

विलासिनी

अरे, तुम घबराती क्यों हो ? क्या सचमुच आज तुम्हें कुछ कष्ट है ?

विषया

हाँ, भाभी ! आज शरीर कुछ क्लान्त-सा हो रहा है ।

विलासिनी

उद्यान में बहुत घूमने फिरने से थकावट आगई होगी ।

विषया

(स्वगत)

यह तो वही चर्चा है !

(प्रकट)

हो सकता है।

विलासिनी

तो आओ, मैं एक सुख-संवाद सुनाऊँ।

विषया

क्या ?

विलासिनी

तुम्हारा विवाह।

विषया

(स्वगत)

यह बात तो आशाजनक है। परन्तु शङ्कित मन को सर्वत्र शङ्का ही होती है !

(प्रकट)

तुम जब देखो, मुझे छेड़ा करती हो। यह क्या अच्छी बात है ?

विलासिनी

मैं झूठ नहीं कहती। वर को देखना चाहो तो आओ, मैं दिखा लाऊँ।

विषया

भाभी ! यदि यही दशा रही तो तुम्हारी बातों का विश्वास उठ जायगा।

विलासिनी

अच्छा, चल कर प्रत्यक्ष देख लो न ?

विषया

मुझे नहीं जाना।

विलासिनी

जिसे आत्मसमर्पण करना है उसे एक बार देख लेना अच्छा होता है।

विषया

(आक्षेप से)

देख लिया !

विलासिनी

कब ?

विषया

मैं कहती हूँ मुझे कुछ नहीं देखना। तुम्हीं देखती रहो।

विलासिनी

अच्छा, तुमने देख लिया है तो चलो, मुझे ही दिखलाओ !

विषया

मैं क्या तुम्हें पकड़े बैठी हूँ ?

विलासिनी

पकड़े तो नहीं बैठीं, पर सूने में किसी के धन को न देखनी

चाहिए। और, कहो चाहे न कहो, मन तो तुम्हारा भी चाहता है !

(त्रोटक)

तुम उत्सुक हो प्रिय-दर्शन को,
पर लाज दबा रखती तन को ।
मन अस्थिर हो उड़ता, गिरता;
जकड़े पर का खग-सा फिरता !

विषया

(मुसकरा कर)

बस तुम्हें यही बातें आती हैं कि और भी कुछ ? लो, मैं यहाँ से जाती हूँ ।

(जाती है)

विलासिनी

(पीछे पीछे जाती हुई)

अरे, क्या तुम अकेली ही जाकर देखना चाहती हो ! पर मैं तुम्हें न छोड़ूँगी ।

चतुर्थांक

प्रथम दृश्य

कुन्तलपुर, धृष्टबुद्धि का मकान

चन्द्रहास

(आप ही आप)

अब मेरी चिन्ता मिटी। मैंने जिसे स्वप्न में देखा था वह प्राणेश्वरी विषया ही थी।

(प्रमिताक्षरा)

शुचि हाव-भाव रस-रङ्ग वही,
रुचि-रूप-शील गुण ढङ्ग वही।
अविभिन्न एक विधि की कृति है,
वह स्वप्न और यह जागृति है!

जिस के बिना मेरी आँखें अन्धकार देखती थीं, वह यही है। अहा!

(इन्द्रवज्रा)

क्या कौमुदी, क्या मणि-मन्जुमाला,
है काँपती दीप-शिखा विशाला।
जो सामने हो वह दिव्य बाला,
तो अन्ध भी देख उठे उजाला!

किन्तु मैंने यह स्वप्न में भी न सोचा था कि इतना शीघ्र मेरा भाग्योदय हो जायगा। हे चित्त! तू अब और क्या चाहता है?

(इन्द्रवज्रा)

तू हो चुका था जिससे निराश,
पाया उसे आप बिना प्रयास।
चिन्ता नहीं है अब अन्य कोई,
होगा न तेरे सम धन्य कोई!

मैं क्या जानता था कि मन्त्री महोदय ने अपने पत्र में मेरे विवाह की ही बात लिखी है! यद्यपि मैंने मदन से बहुत कुछ कहा कि यह शुभ कार्य्य मेरे और आप के पिता जी की उपस्थिति में ही होना चाहिए। पर मेरी एक न चली। जान पड़ता है, पिता जी को यह बात पहले ही से मालूम थी। इसी से उन्हों ने मन्त्री को विशेष रूप से सन्तुष्ट रखने की बात कही थी। माँ ने भी चलते समय इसी भाव का आशीर्वाद दिया था। और माधव ने भी ऐसी ही बातें कही थीं। अब उसे हँसी करने का अच्छा अवसर मिल गया। और मुझे? अहा!

(मालिनी)

कर पकड़ प्रिया का स्वेद-पीयूष पूर्ण
विरह-मरण मेरा हो गया चूर्ण चूर्ण।

उस कर-वर में था हार्दिक स्नेह कैसा
अब तक कर मेरा स्निग्ध है आर्द्र जैसा !

(नेपथ्य में)

भाभी ! तुम मुझे न छेड़ो ।

चन्द्रहास

(चौंक कर)

अरे, यह अमृत कहाँ से बरसा !

(द्रुतविलम्बित)

सुन जिसे चढ़ता मद-सा स्वयं,
उमड़ता रस का नद-सा स्वयम् ।
किस नये स्वर की झनकार से—
बज उठे सब रोम सु-तार-से !

(नेपथ्य में)

मैं न जाऊँगी ।

चन्द्रहास

निश्चय यह मधुरिमा प्रिया के ही कण्ठ की है । जान पड़ता है, ननद-भावज में कुछ विनोद हो रहा है ।

(नेपथ्य में)

अच्छा, वहाँ क्या है जो तुम नहीं जातीं ? तुम्हारे हाथ का रक्खा हुआ चित्र मुझे न मिलेगा । इसी से तुम्हें भेजती हूँ । और कोई बात नहीं । तुम्हें मेरी सौगन्ध है, ननदरानी ! चली जाओ ।

चन्द्रहास

यह विलासिनी है। किसी मिस से प्रिया को मेरे पास भेजना चाहती है। तो अब मैं चुप रहूँ।

(विषया का प्रवेश)

विषया

(स्वगत)

यहाँ आते हुए मुझे इतना सङ्कोच क्यों होता है ? भाभी के सौगन्ध दिलाने से मैं आई सही, पर मेरे पैर आगे को नहीं बढ़ते। आँख भी ऊपर को नहीं उठतीं। अरे नेत्रो !

(आर्य्या)

तुम चकोर-सम जिनको

मन ही मन चन्द्र-सा निरखते हो।

सम्मुख पाकर उनको

हा ! यों विमुख भाव क्यों रखते हो !

चन्द्रहास

देखकर)

अहा ! यह प्राणेश्वरी है—

(आर्य्या)

लज्जावती प्रिया की

गति है मन्द और मतवाली-सी।

यह मेरे मानस में

समा रही है मन्जु मराली-सी॥

विषया

(स्वगत)

यही सामने प्राणेश्वर हैं । अब क्या करूँ ?

(ठिठकती है)

चन्द्रहास

(आगे बढ़ कर)

प्रिये ! इतना सङ्कोच क्यों ?

(हाथ पकड़ कर बिठाना चाहता है)

विषया

(विनीत भाव से)

इस समय न छेड़िए । मुझे काम है ।

चन्द्रहास

क्या काम है ?

विषया

हाथ छोड़िए तो बतलाऊँ ।

चन्द्रहास

प्रिये ! यह नहीं हो सकता—

(शार्दूलविक्रीडित)

मैंने जो यह पाणि-पद्म पकड़ा, मेरा यही हार है,
साक्षी हैं ध्रुव, वेद, पावक तथा साक्षी सदाचार है ।
तेरे प्रेम-पयोधि में बस यही मेरा कराधार है,
छोड़ूँगा इसको न मैं प्रियतमे ! सर्वस्व का सार है ॥

विषया

नाथ ! ऐसा न कहिए। मैं तो अनुचरी हूँ।

चन्द्रहास

अनुचरी नहीं, सहचरी। तुम अनुचरी बनोगी तो मुझे भी अनुचर बनना पड़ेगा !

विषया

धीरे धीरे बोलिए। मुझे बड़ा सङ्कोच हो रहा है।

चन्द्रहास

सङ्कोच की कौन सी बात है ? मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध सङ्कोच का सम्बन्ध नहीं, अभिन्नता का है।

(नेपथ्य में)

(गान)

अहो ! धन्य सम्बन्ध ! तू धन्य है,
जहाँ तू न कोई वहाँ अन्य है।
मिले एक होके यहाँ आज दो,
महामोद छाया मनोजन्य है॥

चन्द्रहास

प्रिये ! सुना ? हमारे तुम्हारे सम्बन्ध में भेद के लिए स्थान ही नहीं।

विषया

तो मैं फिर आजाऊँगी।

चन्द्रहास

(शालिनी)

आके जाना चाहती है कहाँ तू ?

बैठी मेरे चित्त में है यहाँ तू।

लेती है क्या तू प्रतीक्षा-परीक्षा ?

क्या ऐसी ही है प्रिये ! प्रेम-दीक्षा !

विषया

नाथ ! यह बात नहीं। मुझे भाभी ने एक काम के लिए भेजा है। उसे करके मैं फिर आ जाऊँगी।

(नेपथ्य में)

(गान)

द्रुम और अहो लतिके ! मिल के

खिल के तुम भूतल-ताप हरो।

बिछुड़ो न परस्पर एक रहो

नत निर्मल निश्चल भाव धरो॥

मधु-सञ्चय से द्विज वन्दित हो

पथिकाश्रय हो परमार्थ करो।

फल-फूल-भरे दृढ़ मूल रहो

जग में निज शुद्ध सुगन्ध भरो।

चन्द्रहास

प्रिये ! क्या अब भी भाभी के काम का बहाना बना रहेगा ?

विषया

मैं हारी। भाभी के साथ मेरी सखियाँ गा रही हैं। सच कहती हूँ, मुझे बड़ी लज्जा आती है। अभी जाने दीजिए, अवसर पाकर मैं अवश्य आऊँगा।

चन्द्रहास

तो थोड़ी देर तो और ठहरो।

विषया

क्यों ?

चन्द्रहास

(द्रुतविलम्बित)

निरख के छबि की तुझ सृष्टि को—
सफल और करूँ कुछ दृष्टि को।
तनिक तो नयनामृत पी सकूँ,
अमर जीवन पाकर जी सकूँ !

अथवा—

(आर्य्या)

क्षण भर तो हम दोनों
और परस्पर अभिन्न होकर रहलें।
मिल कर अपनी अपनी
मेरे तेरे हृदय कथा कुछ कहले !

(विषया लज्जा का भाव दिखाती है)

(नेपथ्य में)

ठहरो, सुनने दो। हाँ, क्या कहा—चन्द्रनावती से मन्त्री महोदय आ गये और उन्हें पहुँचाने के लिए सुलक्षण और माधव भी आये हैं। अच्छा, मैं आर्य्य चन्द्रहास को सूचित किये देती हूँ।

(दोनों चौंकते हैं)

विषया

नाथ ! अब मुझे जाने दीजिए।

चन्द्रहास

हाँ, अब तो मुझे भी अभ्यर्थना के लिए जाना है।

(सवैया)

पाकर भी यह मैं तुझको
कुछ पा न सका परितृप्ति अभी।
हो न सका अनुलाप, रहा—
मन का मन में अभिलाष सभी !
तू अनुकूल यहाँ जब हो
अब हो सकती फिर भेट तभी।
योग-वियोग तुझी पर है
छलना सुभगे ! मुझको न कभी॥

———

द्वितीय दृश्य

कुन्तलपुर, धृष्टबुद्धि का घर

धृष्टबुद्धि शय्या पर पड़ा है

(नियति का प्रवेश)

नियति

यही है धृष्टबुद्धि। जिसे यह विष देने जाता है उसे मैं विषया दिलाती हूँ। चन्द्रहास के विवाह की बात सुन कर यह अस्वस्थता का बहाना करके पड़ रहा है। पर इसके रोग को मैं जानती हूँ। तुच्छ ! तूने अपना परिश्रम और मेरा पराक्रम देख लिया है

धृष्टबुद्धि

(उठ कर, उत्तेजना से)

अविश्वास ! घोर अविश्वास ! आज मैंने एक बात और सीखी। संसार में किसी का विश्वास नहीं। वाह रे चन्द्रहास ! मैं तेरी प्रशंसा करता हूँ। एक दृष्टि से देख कर मनुष्य को पहचान लेना मेरे लिए साधारण बात है। पर तूने मुझे भी धोखा दिया ! धृष्टबुद्धि ! तुझे अपनी बुद्धि का बड़ा घमण्ड था, आज वह दूर

हो गया। तेरे सब पाँसे उलटे पड़ गये ! एक छोकड़े ने तेरी आँखों में धूल डाल दी !

नियति

जब तक तू अपना दुराग्रह न छोड़ेगा तब तक यही दशा रहेगी।

धृष्टबुद्धि

(सोच कर)

परन्तु नहीं, चन्द्रहास उस साङ्केतिक लिपि को पढ़ ही कैसे सकता था ? कहीं मैंने ही तो विष के स्थान में विषया न लिख दिया हो ? किन्तु ऐसी भूल तो मुझसे हो नहीं सकती। फिर क्या हुआ, सो समझ में नहीं आता।

नियति

उसके समझने में तू सर्वथा असमर्थ है।

धृष्टबुद्धि

मैं एक बार उस पत्र को देखूँगा। किन्तु अब उससे क्या ? जो होना था हो चुका। हृदय ! अब तू क्यों जलता है ? आः ! अब भी तेरा हठ बना हुआ है ! शान्त हो। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं अपने निश्चय पर निश्चल हूँ। मनुष्यता ! तू दूर हो। पशुता ! पिशाची ! मुझे आलिङ्गन कर। मैं अपने प्रण पर अटल हूँ। आकाश ! तू फट जा। पृथ्वी ! तू पाताल चली जा। मैं आकाश के नीचे और पृथ्वी के ऊपर वह काम

करना चाहता हूँ जो आज तक किसी ने नहीं किया। विषया! मेरी बेटी विषया! आः! हृदय! तू वज्र का बन जा। विषया वि-ध-वा हो जाय। मैं चन्द्रहास को न छोड़ूँगा न छोड़ूँगा। न छोड़ूँगा। उसे मार डालूँगा!

नियति

नीच! तू सचमुच नरपिशाच है। किन्तु याद रख, पीछे पछतायगा।

(जाती है)

धृष्टबुद्धि

(भुजङ्गप्रयात)

करूँगा वही जो न कोई करेगा,
मरेगा विपक्षी, मरेगा, मरेगा।
उठूँ तो अभी मेरु को मैं हिला दूँ,
कि आकाश-पाताल दोनों मिला दूँ!

चन्द्रहास का मारना कितनी बात है? उस पर क्रोध करना भी मेरे लिए अपमान का विषय है। मुझे क्रोध है विवाह हो जाने पर, और शोक है—आः! फिर दुर्बलता! दूर हो अभागी! मैं अपना आग्रह न छोड़ूँगा। चन्द्रहास को पूजा के मिस से पुरी के बाहर भेज कर घातकों से—

(चौंक कर)

अरे, कोई सुनता तो नहीं! मुझे किसी का विश्वास नहीं।

दीवारों के भी कान होते हैं ।

(मदन का प्रवेश)

मदन

हाय ! पिताजी को क्या हो गया है—

(इन्द्रवज्रा)

हैं नेत्र मानों युग रक्त-पात्र
सावेग, सन्तप्त, सकम्प गात्र ।
हैं वैद्य भी व्यग्र कि दोष क्या है,
उन्माद है, शोक कि रोष, क्या है !

धृष्टबुद्धि

(देख कर स्वगत)

यह मेरा अन्ध भक्त मूर्ख पुत्र मदन है । अच्छा, अब मैं अपने को सँभालूँ ।

(सँभल कर बैठता है)

मदन

पिताजी ! आप की तबीयत कैसी है ?

धृष्टबुद्धि

अब मैं अच्छा हूँ । कई दिन बाहर धूप में फिरने से और रात में जागने से माथे में कुछ विकार आ गया था । अब ठीक हूँ ।

मदन

मैं तो घबरा गया। राजवैद्यजी के सिवा और किसी से मैंने कुछ नहीं कहा। सब लोग आप से मिलना चाहते थे। पर मैंने आप के आदेशानुसार सबसे कह दिया कि इस समय शरीर कुछ श्रान्त है, अतएव लेट रहे हैं।

धृष्टबुद्धि

ठीक किया। सोने से मेरी थकावट और हरारत मिट गई।

मदन

बड़ी बात है। आज्ञा हो तो राजवैद्यजी आप को एक बार देख लें।

धृष्टबुद्धि

नहीं, अब मैं अच्छा हूँ। आवश्यकता होगी तो देखा जायगा। एक बात है, मैं दो चार दिन राज-काज न देख सकूँगा। महाराज की आज्ञा लेकर तुम्हीं जो उचित समझो करना। मुझ से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं। अभी से तुम्हें अपना भार सँभाल लेना चाहिए। मुझ में अब न वैसी विचार करने की शक्ति है न काम करने की।

मदन

राज-काज के लिए आप चिन्ता न करें, सब होता रहेगा। जिसमें आपका शरीर अच्छा रहे वही कीजिए।

धृष्टबुद्धि

और कोई समाचार है ?

मदन

सब काम आप के पत्रानुसार कर दिया है, सो पहले ही कह चुका हूँ। पर इस तरह विषया—

धृष्टबुद्धि

(बीच में)

विषया नहीं विष—अरे, तुम मेरे किये पर शङ्का करते हो ! मैंने जो उचित समझा, किया।

मदन

आप का मस्तक, जान पड़ता है, अभी तक ठीक नहीं हुआ। आज्ञा हो तो एक बार वैद्यजी को बुलाऊँ ?

धृष्टबुद्धि

नहीं, नहीं, अब मैं अच्छा हूँ। हाथ मुँह धोकर थोड़ी देर बाद सब से मिलूँगा। फिर देखा जायगा।

तृतीय दृश्य

कुन्तलपुर, धृष्टबुद्धि का मकान

विषया

(आप ही आप)

प्राण बचे। भगवान् जानें उस पत्र का क्या आशय था। परन्तु प्राणनाथ को पाकर मैं सब बातें भूल गई थी। पिताजी के आने पर अचानक उस बात की याद आते ही मेरा हृदय धड़कने लगा था। उनके अस्वस्थ रहने से और भी आशङ्का बढ़ गई थी। किन्तु माँ के सामने उन्होंने विवाह हो जाने पर सन्तोष ही प्रकट किया। और, मुझे भी आशीर्वाद दिया। अब मैं निश्चिन्त हुई।

(विलासिनी का प्रवेश)

विलासिनी

ननदरानी! क्या हो रहा है? अब तो तुमने हमें बिलकुल ही भुला दिया। दो ही दिन में तुम और की और हो गईं!

विषया

भाभी! जान पड़ता है, ऐसी बातें न कहो तो तुम्हें अन्न ही न पचे!

विलासिनी

तुम्हें देखे बिना सचमुच मुझे अन्न नहीं पचता। पर तुम अब दूसरी ही चिन्ता में रहती हो।

विषया

मैं तो किसी चिन्ता में नहीं रहती।

विलासिनी

अच्छा, नहीं रहती तो बताओ, आज कौन सा नया समाचार है?

विषया

(आग्रह से)

क्या कोई नया समाचार है?

विलासिनी

मुझसे क्या पूछती हो, तुम्हें तो सब मालूम है!

विषया

तुम जीतीं। बताओ, क्या बात है?

विलासिनी

अच्छा, मुझे क्या दोगी?

विषया

मेरे पास क्या है?

विलासिनी

क्या सब दे दिया?

विषया

किसे, क्या दे दिया ?

विलासिनी

किसे दे दिया, सो तो तुम्हीं जानो। पर क्या दे दिया, यह मैं बता सकती हूँ।

विषया

बताओ ?

विलासिनी

देखती हूँ मन ही दे दिया है !

विषया

जाओ, मैं तुम से न बोलूँगी।

विलासिनी

अब मुझसे क्यों बोलोगी, बोलने वाले जो मिल गये हैं ! पर जब तुम मुझसे नहीं बोलतीं तब मैं ही तुमसे क्यों बोलूँ ?

विषया

भाभी !

विलासिनी

लो, मैं यह चली।

(जाना चाहती है)

विषया

(हाथ पकड़ कर)

मैं हारी। तुम्हें मेरी सौगन्ध है, बताओ क्या है ?

विलासिनी

तुम सौगन्ध न धराया करो। अच्छा, बतलाती हूँ। पर एक बात तुम्हें भी बतानी पड़ेगी।

विषया

मैं तुमसे क्या छिपाती हूँ ?

विलासिनी

तो बताओ, आर्य्य चन्द्रहास जी तुम्हें कैसे लगते हैं ?

विषया

अच्छा बताओ, भैया तुम्हें कैसे लगते हैं ?

विलासिनी

(कुछ लजाकर)

यह मेरी बात का उत्तर नहीं।

विषया

जो मेरी बात का उत्तर है वही तुम्हारी बात का उत्तर होगा।

विलासिनी

देखती हूँ तुम भी कुछ कुछ उत्तर देना सीखने लगी हो! अच्छा, सुनो। तुम्हारी सखी विजया उस दिन उद्यान में तुम से कहती थी कि मैं तुम्हारे धन में भाग लूँगी। सो समझो कि उसने ले लिया!

विषया

मैं नहीं समझी।

विलासिनी

डरो मत। तुम चन्दनावती की अधीश्वरी हुई हो। इससे उस राज्य के मन्त्रिपुत्र और तुम्हारे उनके अभिन्न हृदय मित्र सुलक्षण के साथ उसका विवाह होगा।

विषया

यह तो बड़े हर्ष की बात है। विजया का और मेरा साथ रहेगा। पात्र भी योग्य है।

विलासिनी

वहाँ के सभी पात्र योग्य होते हैं। पर विवाह में धूम धाम न होगी। साधारण रीति से—जैसा तुम्हारा हुआ था—वैसा ही पाणिग्रहण करा दिया जायगा।

विषया

यह क्यों ?

विलासिनी

यह पीछे मालूम होगा। तुम्हारे भैया सब जानते हैं।

विषया

क्या और कोई बात है ?

विलासिनी

हाँ, है।

विषया

तो उसे भी बता दो।

विलासिनी

बताऊँगी। पहले तुम यह बताओ कि एक अपरिचित व्यक्ति के साथ, दो दिन में ही, प्रेम कैसे हो जाता है?

विषया

तुमने फिर हँसी की!

विलासिनी

हँसी नहीं, ननदरानी! मुझे सचमुच आश्चर्य-सा जान पड़ता है।

विषया

आश्चर्य की क्या बात है? प्राणियों के मन में प्रेम की उत्पत्ति स्वाभाविक होती है। उसका बीज हृदय-क्षेत्र में परमात्मा ही बो देता है। अवसर पाते ही वह अङ्कुरित और पल्लवित हो उठता है।

विलासिनी

कोई कहता है कि सौन्दर्य्य से प्रेम होता है, यह कैसी बात है?

विषया

सौन्दर्य्य प्रेम को जगा सकता है पर वह उसका कारण

नहीं। यह भी प्रसिद्ध है कि प्रेम अन्धा होता है। अन्धे को क्या रूप और क्या कुरूप ?

(उपजाति)

जो मोह को प्रेम बखानते हैं—
वही उसे रूपज मानते हैं।
सौन्दर्य्य का वास विलोचनों में,
परन्तु प्रेम-स्थिति है मनों में ॥

यदि सौन्दर्य्य ही प्रेम का कारण हो तो माताएँ अपने कुरूप बच्चों में स्वर्गीय सौन्दर्य्य की झलक न देखें

विलासिनी

माँ-बेटों की चर्चा का यह अवसर नहीं। उसके लिए अभी कुछ दिन ठहरो। इस समय तो दम्पती को लेकर ही समझाओ।

(हँसती है)

विषया

पहले तुम हँस लो।

विलासिनी

अच्छा, अब न हँसूँगी। हाँ, तो क्या प्रेम सम्बन्ध से होता है ?

विषया

नहीं, प्रेम से सम्बन्ध होता है। कहते हैं कि मानने से पराये भी अपने हो जाते हैं और न मानने से अपने भी पराय

हो जाते हैं। जब तक प्रेम नहीं तब तक सम्बन्ध नाम मात्र का है। मैं तो यही कहूँगी कि भिन्न भिन्न स्थानों में, भिन्न भिन्न रूप से, प्रेम ही उस पर प्रकाश डालता है।

विलासिनी

जैसे ?

विषया

सुनो—

(इन्द्रवज्रा)

श्रद्धा बड़ों में, प्रभु में सु-भक्ति,
जाया-पती में प्रणयानुरक्ति।
पुत्रादि में वत्सलता-विकाश,
यों प्रेम का ही सब में प्रकाश॥

विलासिनी

इससे सम्बन्ध पहले और प्रेम पीछे रहा।

विषया

हाँ, पर याद रहे, सम्बन्ध दो प्रकार का है। एक लौकिक और एक मानसिक। मेरा मतलब यह है कि जब तक मानसिक सम्बन्ध न हो तब तक लौकिक सम्बन्ध कुछ नहीं।

विलासिनी

परन्तु इसे तो धर्म्म कहना चाहिए।

विषया

प्रेम तो परम धर्म्म है।

विलासिनी

अच्छा, ननदरानी! अकेला प्रेम सैकड़ों विभागों में विभक्त हो कर अनन्त कैसे रहता है?

विषया

जो अनन्त है उसका किसी ओर अन्त नहीं होता। देख लो, भैया पर तुम्हारा असीम प्रेम है। मुझ पर भी असीम और—

विलासिनी

समझ गई। जान पड़ता है, प्रेम सारे संसार में व्याप्त किया जा सकता है!

विषया

वही तो उसका पूर्ण विकाश है—

(उपजाति)

अनन्त ज्यों व्याप्त सभी कहीं है,
सीमा कहीं भी उसकी नहीं है।
त्यों प्रेम भी व्याप्त अनेक भाँति
न अन्त है और न जाति-पाँति॥

विलासिनी

तब तो सचमुच प्रेम की अपार महिमा है।

विषया

अवश्य—

(उपजाति)

है प्रेम पृथ्वी पर स्वर्गलाता,
मरुस्थकी मध्य सुधा बहाता।
है प्रेम-सा द्रव्य न दृष्टि आता,
मनुष्य को देव यही बनाता॥

विलासिनी

अच्छा, प्रेम पुरुषों में अधिक होता है या स्त्रियों में ?

विषया

(मुसकरा कर)

यह बात भैया से पूछना !

विलासिनी

पुरुष कभी अपनी हीनता स्वीकार करेंगे ?

विषया

तो स्त्रियों को भी अपनी बड़ाई न करनी चाहिए।

विलासिनी

जाने दो। यह कहा कि प्रेम निष्काम है या सकाम ?

विषया

मैं तो प्रेम को मिलनेच्छुक मानती हूँ। जो हो—

(उपजाति)

निष्काम हो प्रेम कि हो सकाम,

है त्याग का एक अपूर्व धाम ।

परन्तु जो प्रेम सकाम होगा—

तो स्वार्थ का ही उपनाम होगा ॥

विलासिनी

अच्छा, ननदरानी ! क्या केवल प्रेम करके ही कोई इस लोक में कृतकृत्य हो सकता है ?

विषया

भाभी ! तुम केवल प्रेममयी हो । पर चिन्ता न करो। प्रेम करना सीख कर अब तुम्हें कुछ करने की आवश्यकता नहीं । क्योंकि—

(उपजाति)

सच्चा जहाँ है अनुराग होता—

वहाँ स्वयं ही बस त्याग होता ।

होता जहाँ त्याग वहीं सु-मुक्ति,

है मुक्ति के सम्मुख तुच्छ भुक्ति ।

विलासिनी

मैं तो जी गई। भगवान् से प्रार्थना है कि इसी प्रकार मेरी संसार-यात्रा पूरी हो जाय । मैं और कुछ नहीं चाहती ।

विषया

तुम जैसी स्नेहमयी भावज भगवान् सबको दे, यही मेरी प्रार्थना है।

(दोनों गले लगती हैं)

विलासिनी

ननदरानी ! यह तो बताओ, तुमने इतनी बातें कहाँ से सीख लीं ?

विषया

तुमने फिर हँसी की ! अब वह बात सुनाओगी या नहीं ?

विलासिनी

अच्छा, सुनो। हमारे महाराज शीघ्र ही संसार-त्यागी होना चाहते हैं। उन्होंने अपना अङ्गहीन छायापुरुष देखा है। इसलिए राज्य छोड़ कर अब वे वन में रहेंगे। राज्य का भार आर्य्य चन्द्रहास जी को देने की उनकी इच्छा है। पर देखो, यह समाचार पिताजी तक न पहुँचे। उनकी आज्ञा है कि राज्य-सम्बन्धी कोई बात अभी मुझ से न पूछी जाय। विचार करने से मस्तक में फिर विकार आ जाने का भय है। अस्तु। अब तुम रानी से महारानी हुईं। बधाई।

विषया

(चिन्तापूर्वक)

भाभी ! महारानी बनने की मुझे अभिलाषा नहीं. महा-

राज के अरिष्ट की बात सुन कर बड़ा दुःख होता है। वे मुझे अपनी पुत्री की तरह समझते हैं। क्या भैया ने ये सब बातें तुम से कही हैं?

विलासिनी

हाँ, वही कह गये हैं। आज राज्य के और प्रजा के मुख्य मुख्य लोगों के साथ महाराज इसी विषय में विचार करेंगे आर्य्य चन्द्रहास जी की योग्यता सभी जानते हैं।

विषया

मैं जानती हूँ, इसी से विजया का विवाह साधारण रीति से होगा।

विलासिनी

सम्भव है, पिताजी को यह बात पहले से ही मालूम हो और इसी से तुम्हारा विवाह भी उन्होंने साधारण रीति से और शीघ्र ही कर देना उचित समझा हो। जो हो, चलो आज खूब बातें हुईं!

चतुर्थ दृश्य

कुन्तलपुर का राजप्रासाद

कौन्तलप और मदन

कौन्तलप

वत्स मदन! तुम ठीक कहते हो। चन्द्रहास को अवश्य सङ्कोच होगा। राज्य का भार ऐसा ही होता है—

(मालिनी)

शत शत मनुजों के सोच में शुष्क होना,
शत शत मनुजों की नींद के बाद सोना।
समझ वह सकेगा जानता जो इसे है
विपुल विभव से हा! सौख्य होता किसे है?

परन्तु एक बात है। जैसा काम वैसा ही परिणाम। दूसरों की चिन्ता करने में जैसा पुण्य है वैसा और किसी काम में नहीं। उसमें एक ऐसी शान्ति है जिससे सारी भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं।

मदन

आर्य्य! यही बात है। और, इसी से मुझे आशा होती है कि वे किसी प्रकार इस भार को स्वीकार कर लेंगे।

कौन्तलप

सो मैं जानता हूँ। चन्द्रहास अपूर्व उन्नत हृदय लेकर संसार में अवतीर्ण हुआ है। इसी से सब की सम्मति लेकर मैंने उसे चुना है। महात्मा गालव ने तो उसके विषय में विशेष सम्मति दी है। चलो, अब मैं निश्चिन्त होकर, आते हुए अन्तिम समय की प्रतीक्षा कर सकूँगा।

मदन

आर्य्य! इस बात का स्मरण आते ही मुझे बड़ा दुःख होता है। क्या यह अरिष्ट किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता?

कौन्तलप

सुनो—

(इन्द्रवज्रा)

जो जन्मता है मरता अवश्य,
जो दीखता है सब है विनश्य।
ज्ञानी जनों ने यह तत्त्व जाना—
है मृत्यु में ही अमरत्व पाना॥

मदन

हाय! तो क्या अब हम लोग आपके चरणों में बैठकर उपदेश न पा सकेंगे?

कौन्तलप

वत्स मदन ! चिन्ता व्यर्थ है । मान लो, किसी प्रकार मैं और भी कुछ दिन संसार में बना रहूँ, तो इससे क्या ?

(स्रग्धरा)

आता है जो जहाँ से विवश वह वहीं
अन्त में लौट जाता;
सोचो तो, बन्धनों में पड़ कर पशु-सा—
कौन है शान्ति पाता ?
आना-जाना हमारा जब तक न मिटे
है कहाँ मुक्तिमाता ?
उद्योगी-उद्यमी है पुरुष बस वही
जो उसे है मिटाता ॥

मदन

परन्तु आर्य्य ! यह उद्योग, यह उद्यम क्या यहीं रह कर नहीं किया जा सकता ?

कौन्तलप

क्यों नहीं—

(भुजङ्गी)

जहाँ चाहिए चित्त जो हो वहीं—
रहे देह चाहे जहाँ क्यों नहीं ।
सुनो, एक सौ की यही उक्ति है—
अनासक्ति ही मुक्ति की युक्ति है ॥

किन्तु आश्रमधर्म्म का पालन करना भी तो कर्तव्य है

मदन

तो अब क्या आर्य्य वन में ही रहेंगे ?

(मन्दाक्रान्ता)

छोड़ेंगे क्या अहह ! सबको, आर्य्य ने क्या विचारा ?
तोड़ेंगे क्या इस जगत से आप सम्बन्ध सारा
हो जावेगा अब यह बड़ा सौध क्या हाय ! सूना ?
ऐसी बातें सुन कर किसे दुःख होगा न दूना ?

कौन्तलप

वत्स मदन ! तुम व्यर्थ ही व्याकुल होते हो । अब तक मैंने इस लोक की बातें देखी सुनी हैं । अब परलोक की ओर भी देखना चाहिए या नहीं ? कब तक इस भार को उठाऊँगा ! मेरी अवधि के अब दिन ही कितने रह गये हैं ? क्या अब भी मुझे, सब छोड़ कर, परलोक के लिए प्रस्तुत न होना चाहिए ? तुम मेरे लिए इतने दुःखित होते हो किन्तु मैं दुःख का कोई कारण नहीं देखता । संसार की यही रीति है । योग्य पात्र के हाथ में अपना राज्य सौंप कर मैं निश्चिन्त भाव से, भगवान् का ध्यान करता हुआ, अपने अभीष्ट अवसर की प्रतीक्षा करता रहूँगा । इसमें चिन्ता की कौन सी बात है ?

मदन

आर्य्य ! मैं यह जानता हूँ किन्तु मन नहीं मानता ।

(आँसू पोंछता है)

कौन्तलप

मन को प्रबोध देना चाहिए। अब शान्त हो और जो कार्य्य है उसे सुनो।

मदन

(शान्त होकर)

आज्ञा कीजिए, क्या करना होगा ?

कौन्तलप

मैंने महात्मा गालव को बुलाया है। तुम भी अभी आकर चन्द्रहास को बुलालाओ। मुझे जो कुछ कहना सुनना है आज ही उससे कह सुनलूँ।

मदन

जो आज्ञा।

पंचमांक

प्रथम दृश्य

उद्यान

चन्द्रहास, सुलक्षण और माधव

चन्द्रहास

उस दिन जब मैं यहाँ आया था तब इसी उपवन में मैंने दोपहरी बिताई थी।

माधव

भला आप आये किस लिए थे ?

सुलक्षण

मन्त्री महोदय का पत्र देने के लिए।

माधव

मैं आप से नहीं पूछता।

चन्द्रहास

हाँ, मैं मन्त्री महोदय का पत्र लेकर ही तो आया था।

माधव

अच्छा, उस पत्र में क्या लिखा था ?

चन्द्रहास

म क्या जानूँ। क्या मैंने उसे खोलकर पढ़ा था !

माधव

जाने दीजिए। फिर क्या हुआ ?

चन्द्रहास

बस, मैंने वह पत्र मदन को दे दिया।

माधव

मदन ने भी आपको उसका कुछ उत्तर दिया ?

चन्द्रहास

(मुसकराकर)

तू नहीं जानता ?

सुलक्षण

जानता है, पर आप से कहलाना चाहता है।

चन्द्रहास

इससे क्या होगा ?

माधव

मेरे कथन की सत्यता। स्मरण है, जब आप यहाँ आने लगे तब मैंने क्या कहा था ?

चन्द्रहास

(मुसकराकर)

स्मरण है। अब शीघ्र ही तुझे त्रिकालज्ञ की पदवी दी जायगी !

सुलक्षण

अच्छा, त्रिकालज्ञ जी ! यह तो बताइए कि मन्त्री महोदय ने इस प्रकार गुप्तरीति से विवाह क्यों कराया ?

माधव

उनका तो कहना है कि किसी दैवज्ञ ने ऐसा होने में ही वर-वधू का कल्याण बतलाया था। परन्तु मैं जानता हूँ, यह बात बनाई हुई है। असल में बारात को खिलाने पिलाने के डर से ही ऐसा किया गया है। बुड्ढा है बड़ा लोभी !

सुलक्षण

(आक्षेप से)

त्रिकालज्ञ होने पर भी तुझे पेट की ही पड़ी रही !

माधव

हैं, उदर देव की इतनी उपेक्षा !

(वंशस्थ)

हरा भरा है सब पेट जो भरा,
सुनो, नहीं तो बस शून्य है धरा।
लगे हमारे सब काम पेट से,
बचा न कोई

(पेट पर हाथ मार कर)

इसकी चपेट से

चन्द्रहास

अच्छा, अच्छा, तू असन्तुष्ट न हो। कहे तो तेरी पेट-पूजा का कुछ प्रबन्ध किया जाय ?

माधव

जय हो आपकी। बस मैं और क्या चाहता हूँ ?

चन्द्रहास

तो इस उद्यान में फलों की क्या कमी है, श्रीगणेश करने की ही देर है।

माधव

(मुँह बनाकर)

वाह ! आपकी ससुराल में क्या मुझे फलाहार ही करना पड़ेगा ? परन्तु मैं ऐसा क्यों करने लगा—

(उपजाति)

क्या छोड़ते हैं व्रत को विवेकी ?
निवाहते हैं निज टेक टेकी।
जो मन्जु मुक्ताफल भोज पाते—
भला कहीं हंस चने चबाते !

सुलक्षण

परन्तु मुक्ताफल भी तो फल ही रहे !

माधव

अजी, इन फलों में और इनमें बड़ा अन्तर है। कोरी संज्ञा की समता से काम नहीं चलता—

(आर्य्या)

गुण-समता समता है

वह समता क्या जो कि नाम ही तक है ?

दोनों द्विज हैं, फिर भी—

हंस हंस है सदा और बक बक है !

सुलक्षण

वाहरी बकबक ! कुमार, हंस मृणाल-तन्तु भी तो खाते हैं। इसलिए माधव को इस उद्यान के सरोवर में छोड़ दिया जाय तो कैसा ?

माधव

क्या पानी में डुबो कर मेरे प्राण लेना है !

चन्द्रहास

(मुसकराकर)

अच्छा बोल क्या खायगा ? पर तूने फलों की इतनी उपेक्षा क्यों की ? उनमें तो अनेक गुण होते हैं।

माधव

गुणों को कौन पूछता है ? सब रूप पर ही मरते हैं !

इसीसे मुझे वे फल पसन्द हैं जो मोतीचूर से बनते हैं। उन्हें चाहे कोई मोदक कहे चाहे लड्डू।

सुलक्षण

वाह री रुचि ! मानों यह उद्यान नहीं, कोई बाज़ार है ! इसी तरह कभी अमावास्या को चन्द्र की ओर आपकी रुचि न हो जाय !

चन्द्रहास

चन्द्र नहीं तो अर्द्धचन्द्र माधव को, जब यह चाहे, मैं दे सकता हूँ।

(मदन का प्रवेश)

माधव

क्यो नहीं, अब तो मुझे अर्द्धचन्द्र मिलेगा ही। यह देखिए, आप के साले साहब आ रहे हैं। अहा ! संसार में साले के समान और किसका सम्मान है !

मदन

माधव ! यदि तुम्हें साला होना पसन्द हो तो आज से मैं तुम्हें साला ही कहा करूँ ?

माधव

यह सम्मान तो आप के ही हिस्से में आ गया है। हम जो हैं उसी में सन्तुष्ट हैं !

(सब हँसते हैं)

सुलक्षण

(मदन से)

कहिए, आप का इस समय यहाँ आना कैसे हुआ ?

मदन

सौभाग्य से आर्य्य चन्द्रहास जी की बहुत बड़ी वृद्धि हुई है ।

माधव

जिसका आरम्भ आपकी ओर से हुआ है ।

सुलक्षण

माधव ! सुनो । हँसी तो होती ही रहेगी ।

(मदन से)

सब आप की कृपा है । कहिए, क्या बात है ?

मदन

हमारे महाराज शीघ्र ही मुनिवृत्ति धारण करना चाहते हैं। यह तो आप जानते ही हैं कि उनके कोई औरस पुत्र नहीं हैं इसलिए वे आर्य्य चन्द्रहास जी को, सब प्रकार सुयोग्य समझ कर, अपने राज्य का अधिकार देना चाहते हैं ।

चन्द्रहास

(सङ्कोचपूर्वक)

भला मैं किस योग्य—

मदन

(बीच में)

जो योग्य होते हैं वे ऐसा ही कहा करते हैं। किन्तु योग्यता छिपी नहीं रहती। वह आप ही प्रकट हो जाती है।

सुलक्षण

निस्सन्देह यही बात है। महाराज कौन्तलप की सूक्ष्म-दर्शिता भी अपूर्व है!

माधव

और कुमार के निर्वाचन से हम लोगों को जो आनन्द हुआ है वह भी अपूर्व है।

सुलक्षण

और स्वाभाविक भी।

मदन

इसमें क्या सन्देह। जो आर्य्य चन्द्रहास जी को कुछ भी जानता होगा वह भी इस बात को सुन कर हर्षित होगा। हम और आप तो आत्मीय ठहरे!

चन्द्रहास

किन्तु सच मानिए, मैं भाराक्रान्त-सा हो रहा हूँ। मुझे डर है कि मैं इस भार को न सँभाल सकूँगा। मेरा जो छोटा-सा राज्य है उसी का शासन समुचित रीति से होता रहे तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

मदन

आप जैसा शासक मिलना इस राज्य के लिए सौभाग्य की

बात है। आप की कार्य्य-कुशलता और नीति-परायणता प्रसिद्ध होरही है।

चन्द्रहास

जो जिसका कर्तव्य है उसे पालन तो करना ही चाहिए पर मेरा स्वभाव कुछ स्वच्छन्दताप्रिय है और राज्य-कार्य में अनेक उलझनें हुआ करती हैं।

मदन

किन्तु जिस कार्य में मनुष्य-समाज का हितसाधन हो उसे करना ही चाहिए। सब को विश्वास है कि आप के राजा होने से इस राज्य की और भी उन्नति होगी।

चन्द्रहास

यही तो मुझे डर है। कहीं लोगों को पीछे अपना विश्वास बदलना न पड़े!

मदन

ऐसा कभी नहीं हो सकता। अब विवाद रहने दीजिए। महाराज राजप्रासाद में आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसी समय जाकर उनसे मिलिए।

चन्द्रहास

किन्तु ससुर जी ने सन्ध्या के बाद मुझे विजनेश्वरी देवी की पूजा करने की आज्ञा दी है। मैं वहीं जानेवाला था।

मदन

इसकी चिन्ता न कीजिए। आपके बदले मैं वहाँ जाकर पूजा किये आता हूँ। आप महाराज के पास चलिए।

द्वितीय दृश्य

निविड़ वन

धृष्टबुद्धि

(आप ही आप)

बड़ा अँधेरा है। जान पड़ता है, इसके गर्भ में भयङ्कर आकृति वाले पिशाच चुपचाप नाच रहे हैं ! यह आहट कैसी ? क्या कोई आ रहा है ? कोई नहीं, वायु का शब्द है। आज वायु इतने वेग से क्यों चल रहा है ?

(नियति का प्रवेश)

नियति

मैं साथ हूँ और अँधेरे उजेले में सर्वत्र, स्वयं अदृश्य होने पर भी, तुझे देखती हूं।

धृष्टबुद्धि

जान पड़ता है, कोई बोल रहा है ! कहीं घातक तो लौट कर नहीं आ रहे ? अथवा चन्द्रहास ही उनका वध करके मुझे मारने के लिए न आ रहा हो ? इस निविड़ अन्धकार में मुझे कौन बचावेगा ?

नियति

तुझे कोई बचावे या न बचावे पर चन्द्रहास को बचाने वाली मैं हूँ।

धृष्टबुद्धि

आ तो कोई नहीं रहा, यह मेरे ही पैरों की आहट थी। पर मेरी आहट सुन कर कोई आ न जाय! तो अब दबे पैरों चलूँ।

(उसी प्रकार चलता हुआ)

अन्धकार ! तू और भी घना हो जा। मुझे कोई न देखे। संसार ! तू अपनी आँखें मीच ले। धृष्टबुद्धि अपने दामाद की हत्या करा के उसे देखने जा रहा है !

नियति

मैं साक्षिणी बन कर बराबर तेरे साथ हूँ।

धृष्टबुद्धि

चन्द्रहास आज इस अँधेरी रात में उस निर्जन स्थान में मार डाला जायगा। और, विषया ? वह विधवा हो जायगी। हा ! उसका पिता मैं ही उसके वैधव्य का कारण होऊँगा ! मैं यह क्या कर रहा हूँ ? क्या अपनी पुत्री की दुर्दशा भी आमरण अपनी आँखों से देखनी पड़ेगी ? उसका वह रोना न सुनने के लिए इस अन्धकार में क्या कोई छिपने योग्य स्थान मुझे मिल जायगा ?

नियति

मैं तुझे स्थान बतलाऊँगी।

धृष्टबुद्धि

पर क्या मैं अभी इस अनर्थ को रोक नहीं सकता? क्यों नहीं। किन्तु नहीं, ब्राह्मणों की बात मैं कभी पूरी न होने दूँगा। परन्तु क्या उसके पूरे होने में अब कुछ कसर है? चन्द्रहास मेरा दामाद बन बैठा! जो कुछ ब्राह्मणों ने कहा था वह सब हो चुका।

नियति

फिर भी तू हठ नहीं छोड़ता!

धृष्टबुद्धि

तो अब क्या होगा? विषया ही विधवा होगी! घातक अभी दूर न गये होंगे। मैं दौड़ कर अभी उन्हें रोक सकता हूँ। फिर चन्द्रहास? मेरा वैरी चन्द्रहास? वह बच जायगा और मैं उसे देख देख कर मन ही मन जला करूँगा। यह नहीं हो सकता। मेरी हृदयाग्नि उसके मरने से ही शान्त हो सकती है। परन्तु फिर विषया का विलाप बाण बन कर मेरे हृदय को विद्ध करेगा! हाय! विषया का विचार मुझे कायर बना देता है। दूर हो कायरता! मैं अब दृढ़ हूँ —वज्र का हूँ। विषया के विलाप की कल्पना मुझे विचलित न कर सकेगी। मैं अपने

निश्चय पर निश्चल रहा, यह विचार उसके चीत्कारों से मेरे चित्त को चञ्चल न होने देगा।

नियति

जो कुछ मैं करूँगी वही होगा।

धृष्टबुद्धि

पर यदि विषया उसके वियोग में बिना पानी की मछली की तरह तड़प तड़प कर मर गई तो? जिस समय वह बाल बिखराये, आँसू बहाती हुई, पक्षियों को चौंका देनेवाला चीत्कार करती हुई, चन्द्रहास का नाम ले ले कर, मेरे सामने प्राण त्याग करेगी उस समय मैं क्या करूँगा? हाय! अपनी प्यारी पुत्री की मृत्यु का भी मैं ही कारण बनूँगा! इन हाथों से दो दो हत्याएँ! हा! मर्म्मवेदना! हा! यमयातना! रहो कल्पने! मैं अभी यह सब रोक सकता हूँ।

नियति

इन सब बातों का रोकने वाला तू नहीं, मैं हूँ।

धृष्टबुद्धि

मैं अभी जाकर घातकों को रोकता हूँ। पर यदि उनके पहुँचने के पहले ही मैं वहाँ पहुँचा तो चन्द्रहास से मिलने का क्या बहाना करूँगा? और यदि उसी समय वहाँ घातक भी पहुँच गये तो चन्द्रहास उन्हें देख कर क्या कहेगा? अथवा मैं

यदि चन्द्रहास के वध के बाद पहुँचा ? ओः ! चन्द्रहास का वध और फिर विषया की हत्या !

नियति

मैं इन दोनों बातों को रोकने वाली हूँ ।

धृष्टबुद्धि

अरे, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। घातक अभी वहाँ न पहुँचे होंगे, उन्हें पुकारूँ पर मेरा शब्द सुन कर कोई और न आ जाय ! कोई दूसरा मनुष्य इस समय, यहाँ, मुझे देख कर क्या कहेगा ? तो चुप रहूँ । पर हृदय इतना क्यों धड़कता है ? मैं काँप क्यों रहा हूँ ? क्या मैं डर रहा हूँ ? नहीं, धृष्टबुद्धि किसी से नहीं डर सकता । पर मैं विह्वल हो रहा हूँ ! ओः ! बड़ा क्लेश होता है ।

(चौंक कर)

अरे, यह चमक कैसी ? क्या चन्द्रहास की आत्मा उजेला करती हुई परलोक को जा रही है ? वध ! रक्त ! मेरे हाथ रुधिर से सने हैं और बेटी के रुधिर से फिर सनेंगे ! ओः ! दारुण दुःख है । छाती फटी जाती है ! वह देखो, चन्द्रहास का रुण्ड इसी ओर आ रहा है ! अरे, कोई बचाओ ।

नियति

इसकी कल्पना इसे उचित दण्ड दे रही है ।

धृष्टबुद्धि

यहाँ तो कुछ नहीं। फिर वह चमक क्या थी ? मेरा सिर घूम रहा है। आँखें नीचे गिर पड़ना चाहती हैं। मार्ग नहीं सूझता और पैर भी ठीक ठीक नहीं पड़ते। हैं, मैं इतना कातर तो कभी नहीं हुआ। जो हो, घातकों को गये अभी थोड़ा ही समय हुआ है। मैं जाकर उन्हें रोकता हूँ। पर यदि वे अपना काम कर चुके होंगे तो ? हाय ! हाय ! क्या करूँ ? किसी प्रकार शान्ति नहीं मिलती !

(शार्दूलविक्रीडित)

मेरे वज्र-कठोर-चित्त ! अब तो तू शान्त हो, शान्त हो,
रे रे निर्दय नीच भाव ! अब तू निष्क्रान्त-निष्क्रान्त हो।
हिंसे ! तू हटजा, जला मत मुझे, हे दैव ! मैं क्या करूँ ?
हा ! कैसे इस वन्हि से अब बचूं ? तू मृत्यु दे तो मरूँ !

नियति

मूर्ख ! अब मुझे पुकारता है। तीर हाथ से निकाल कर हाय हाय करता है। अच्छा, जब तक देवी के मन्दिर में जाकर तू मेरा पूरा प्रभाव देख ले तब तक मैं दूसरा कार्य्य करती हूँ।

तृतीय दृश्य

कुन्तलपुर का राजप्रासाद

गालव, कौन्तलप और चन्द्रहास

कौन्तलप

देव! वत्स चन्द्रहास राज्यभार ग्रहण करने में बहुत सङ्कोच करता है।

चन्द्रहास

आर्य्य! सचमुच मुझे बड़ा सङ्कोच होता है। मुझ अयोग्य पर आपकी इतनी कृपा है किन्तु—

गालव

सङ्कोच की कोई बात नहीं। तुम योग्य हो। परन्तु एक बात है। कदाचित् तुम अधिक दायित्व से दूर रहना चाहते हो। किन्तु दायित्व तुम्हीं जैसे पुरुषों से आश्रय और शोभा पा सकता है। तुम जैसे निःस्वार्थ और योग्य व्यक्ति ही जन-समाज का कल्याण साधन कर सकते हैं। जो स्वार्थी हैं उनसे क्या आशा की जा सकती है। इसलिए दायित्व की आशङ्का करके तुम्हें कभी पीछे न हटना चाहिए। संसार में आकर कर्मवीर बनने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। विचार करके देखो,

यदि दूसरों की चिन्ता के डर से तुम किसी बड़े काम से हाथ खींच लोगे तो क्या प्रकारान्तर से अपने सुख के लिए स्वार्थी न कहे जाओगे ? यह भी स्मरण रक्खो कि दूसरों के लिए चिन्ता करना ही अपनी चिन्ताओं पर विजय पाना है।

चन्द्रहास

देव ! आपका उपदेश पाकर मैं कृतार्थ हुआ। आप ही के आशीर्वाद से वह सफल हो सकता है।

गालव

मैं आशीर्वाद करता हूँ, तुम सर्वदा कृतकार्य्य होगे।

कौन्तलप

महात्माओं के वचन कभी मिथ्या नहीं होते—

(अनुष्टुप्)

स्वस्तिवाद विरक्तों का और ही कुछ वस्तु है।
उसके साथ ही होता ईश का एवमस्तु है॥

चन्द्रहास

मैं कृतार्थ हुआ। भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है कि—

(शिखरिणी)

प्रभो ! मेरे कन्धे बल कर सकें प्राप्त इतना—
उठालें वे दोनों उन पर पड़े भार जितना।
निकाली है पृथ्वी सहज तुमने सिन्धु जल से,
करो पुत्रों को भी प्रबल अपने आत्मबल से॥

गालव

मनुष्य मात्र को भगवान् से ऐसी ही प्रार्थना करनी चाहिए और कर्म्मक्षेत्र से कभी न हटना चाहिए—

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्म्मक्षेत्र कभी न सङ्कुचित हो, विस्तीर्ण होता रहे;
कर्म्मी कर्षक धर्म्म-बीज उसमें सोत्साह बोता रहे।
होंगे वे फल जो कि विश्व-विभु के नैवेद्य में आयँगे,
देगा मुक्ति महाप्रसाद उनको, वे धन्य जो पायँगे॥

कौन्तलप

ऐसा प्रसाद सबके भाग्य में हो।

चन्द्रहास

इस राज्य के जब ऐसे पुरोहित हैं तब मुझे कोई चिन्ता नहीं।

गालव

सुधार्म्मिक के तुम जैसा धार्म्मिक पुत्र होना उचित ही है।

कौन्तलप

(चौंककर)

अरे, यह क्या रहस्य है !

चन्द्रहास

देव ! कृपा कर बताइए कि आप ने क्या कहा। मुझे तो अपने कुल के विषय में कुछ भी मालूम नहीं।

गालव

और तुम्हें इसकी चिन्ता भी है। इसी से मैंने इस प्रसङ्ग को छेड़ा है। अच्छा, सुनो। केरल देश के स्वर्गीय राजा सुधार्म्मिक तुम्हारे पिता थे। कुचक्रियों ने उनका राज्य हरण कर लिया था। उस समय तुम एक वर्ष के भी न थे। तुम्हारी धाय किसी प्रकार तुम्हें लेकर इसी नगर में आ रही थी। उसके मरने पर तुम किसी तरह कुलिन्दक के यहाँ पहुँच गये। और सब बातें तुम्हें शीघ्र ही मालूम हो जायँगी।

कौन्तलप

यह तो नया भेद निकला। तब तो चन्द्रहास मेरे मित्र का ही पुत्र है!

चन्द्रहास

देव! ये बातें सुन कर मेरे चित्त में हर्ष और विषाद दोनों एक ही साथ उत्पन्न हो रहे हैं। आज आपने मुझे मानों नया जीवन देकर मेरी सब ग्लानि मिटा दी।

(मालिनी)

निज परिचय पाके आप से यों यथार्थ—
सचमुच सहसा मैं होगया हूँ कृतार्थ।
स्वयमपि अपने को दीखता मैं नया हूँ,
मर कर फिर मानों आज मैं जी गया हूँ!

किन्तु हाय! मैं कैसा अभागा हूँ कि मेरे उत्पन्न होते ही मेरे माता-पिता का कैसा शोचनीय परिणाम हुआ!

कौन्तलप

वत्स ! यह आक्षेप क्यों ? तुमने तो तीन तीन कुलों का उद्धार किया है ।

(देख कर)

अरे, कौन है ?

(एक सेवक का प्रवेश)

सेवक

महाराज की जय हो । चन्दनावती के मन्त्रिपुत्र श्रीयुक्त सुलक्षण जी किसी आवश्यक कार्य्य से आये हैं ।

कौन्तलप

जा, भेज दे ।

सेवक

जो आज्ञा ।

(जाता है)

(सुलक्षण का प्रवेश)

सुलक्षण

(प्रणाम करके)

एक बड़ी शोचनीय घटना हो गई है ।

चन्द्रहास

क्या हुआ ? सुलक्षण ! तुम तो बहुत घबराये हुए हो !

कौन्तलप

मुझे भी चिन्ता हो गई है।

सुलक्षण

महाराज ! कुमार के यहाँ चले आने के पीछे मुझे और माधव को उद्यान में कुछ देर हो गई थी। जब हम लोग नगर की ओर आ रहे थे तब मार्ग में एक मनुष्य पागल की तरह जाता हुआ दिखाई दिया।

चन्द्रहास

मालूम हुआ वह कौन था ?

सुलक्षण

पीछे मालूम हुआ कि वे मन्त्री महोदय थे। वे आप का नाम लेकर कुछ बड़बड़ाते हुए जल्दी जल्दी जा रहे थे। हम लोग भी चुप चाप उनके पीछे हो लिये।

कौन्तलप

फिर ?

सुलक्षण

वे उसी तरह चलते हुए विजनेश्वरी देवी के मन्दिर में पहुँचे।

कौन्तलप

वहाँ तो चन्द्रहास के बदले पूजा करने मदन भी गया था। फिर ?

सुलक्षण

जब तक हम लोग मन्दिर के पास पहुँचें तब तक एक भयङ्कर चीत्कार सुनाई दिया ।

चन्द्रहास

भगवान् कुशल करें ।

कौन्तलप

फिर ?

सुलक्षण

हम दोनों दौड़कर मन्दिर में गये । वहाँ जाकर देखा कि पिता-पुत्र दोनों ही भगवती के सामने मृतप्राय पड़े हैं । दोनों के सिर फूट गये हैं । रुधिर बह रहा है !

चन्द्रहास

क्या प्राण—

सुलक्षण

घबराहट के मारे मैं कुछ निश्चय नहीं कर सका । पर मदन के लिए चिन्ता है । माधव को वहाँ छोड़ कर मैं यहाँ आया हूँ ।

कौन्तलप

यह तो बड़ी अशुभ घटना हुई ।

चन्द्रहास

यह मेरा ही दुर्भाग्य है। मेरे राजा होने के पहले ही ऐसे अनर्थ होने लगे !

गालव

जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है ! धृष्टबुद्धि जैसे धृष्ट को आज उसके किये का फल मिल गया।

चन्द्रहास

देव ! उन्होंने ऐसा क्या किया है ?

गालव

जो कोई नहीं कर सकता वही उसने किया है। वह आज वहाँ भेज कर तुम्हीं को मरवाना चाहता था। पर दैव तुम पर अनुकूल है, इससे तुम्हारे बदले मदन वहाँ चला गया।

कौन्तलप

किन्तु मदन निर्दोष है।

गालव

सो वह जगज्जननी की गोद में है।

चन्द्रहास

देव ! आप सब जानते हैं। भला, ससुरजी मुझे—

गालव

चलो, वहीं सब मालूम हो जायगा। इस समय यहाँ विलम्ब करना ठीक नहीं।

चतुर्थ दृश्य

विजनेश्वरी देवी का मन्दिर

गालव, कौन्तलप, चन्द्रहास, सुलक्षण, माधव, धृष्टबुद्धि और मदन

गालव

भगवती ने अपनी अपूर्व अनुकम्पा दिखाई। मन्त्रिवर! मैंने भी तुम्हें क्षमा किया। तुम्हारे हृदय की शुद्धता देखकर अब मैं तुम से सन्तुष्ट हूँ। जो होना था हो गया। अब उन बातों के लिए तुम खेद न करो।

धृष्टबुद्धि

देव! मैं अनुताप से जला जाता हूँ। मैंने जो अनर्थ किये हैं उनसे, न जानें, कैसे मेरा उद्धार होगा? आप सबने कृपा-पूर्वक मुझे क्षमा कर दिया है किन्तु मेरा अन्तरात्मा अब भी मुझे दण्ड दे रहा है। मैं विधाता से विरोध करने जाता था किन्तु मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि—

(द्रुतविलम्बित)

विधि-विधान कभी टलता नहीं,

हठ किसी जन का चलता नहीं।

नियति ने वह योग मिला दिया—

कि जिसने 'विष' का 'विषया' किया !

कौन्तलप

अब चित्त को धीरज दो। इसमें भी तुम्हारा कल्याण ही हुआ है। स्वयं भगवती जगज्जननी ने तुम पर दया की है, नहीं तो आज मदन मर ही चुका था !

धृष्टबुद्धि

महाराज ! इस अधम पर माँ ने जो दया की है वह केवल आप लोगों की ओर देख कर। हाय ! मैं तो चिरञ्जीव चन्द्रहास को मारने जाता था और ये हम दोनों के पीछे भगवती के सामने अपना बलिदान करने को तैयार थे !

मदन

मेरा जीवन आज से सब प्रकार आर्य्य चन्द्रहास के अधीन है। मैं तो मर ही चुका था !

चन्द्रहास

तुम सर्वथा मेरे हो। भगवती ने अपना प्रसादस्वरूप तुमको मुझे दिया है।

सुलक्षण और माधव

हम लोगों की यह गोष्ठी सदा बनी रहे।

कौन्तलप

भगवान् ऐसा ही करेंगे।

धृष्टबुद्धि

मैं भी यही चाहता हूँ। वत्स मदन ! तुम्हारा जो कुछ कर्तव्य है उसे तुम जानों। मेरे कहने की आवश्यकता नहीं। मैं भी अन्त समय में अपने महाराज का साथ दूँगा।

मदन

तब तो मुझे दुहरा पितृ-वियोग होगा।

धृष्टबुद्धि

बस, अब तुम मुझे अपने कर्तव्य से न रोको। जिन्होंने मुझे अपना सेवक न समझ कर आत्मीय समझा, जिनके साथ राज-काज किया, मन्त्रणा की, गोष्ठी की और सदैव दुर्लभ सुख भोगा, उन्हीं श्रद्धास्पद स्वामी को छोड़ कर अब मैं यहाँ रह कर क्या करूँगा ?

मदन

मैं आपको अपने कर्तव्य से नहीं रोक सकता। किन्तु मैं सर्वथा अबोध हूँ।

कौन्तलप

मन्त्रिवर ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ और प्रसन्न मन से यही कहता हूँ कि कुछ दिन और—

धृष्टबुद्धि

(बीच में, हाथ जोड़ कर)

महाराज ! मुझे अधम जान कर आप न छोड़ सकेंगे, आप को मेरा उद्धार करना ही होगा।

कौन्तलप

मैं और किसी भाव से ऐसा नहीं कहता। तुम्हारे रहने से इन लोगों को शासन-कार्य्य में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। इसी से मैंने ऐसा कहा है।

चन्द्रहास

आप के बिना सचमुच हमको पद पद पर कठिनता होगी।

धृष्टबुद्धि

तुम स्वयं योग्य हो। और, मुझसे अब कुछ हो भी न सकेगा। मेरे लिए शान्ति का यही एक मार्ग है।

माधव

(स्वगत)

देखता हूँ, बुड्ढा तो आज कुछ का कुछ हो गया है !

गालव

(कौन्तलप से)

अब मन्त्री को समझाना व्यर्थ है। इन्हें निराश न कीजिए।

कौन्तलप

जो आज्ञा।

(मदन से)

वत्स मदन ! अब इसी में कल्याण है।

मदन

मैं अभागा कल्याण के मार्ग में कण्टक न बनूँगा।

(आँसू पोंछता है)

धृष्टबुद्धि

(ऊपर की ओर देख कर)

जगदीश ! अब यह अधम जन क्या तेरी ओर आ सकता है ?

(गान)

मिटा हे प्रभो ! आज अज्ञान मेरा,
हुआ है नई बुद्धि से बोध तेरा।
अभी था तुझे नाथ ! जाना न मैंने,
अहम्भाव ने था मुझे हाय ! घेरा।
क्षमा चाहिए, जो हुआ होगया है,
बना आप ही आज से चित्त चेरा।
अँधेरे गढ़े में गिरा जा रहा था,
दया की, मुझे दीप्ति की ओर फेरा।
हुई सत्यसत्ता स्वयं सिद्ध तेरी,
भरे भक्ति के भाव, भागा अँधेरा।
जगा हूँ नया जीवनालोक पाके,
हटी मोह-निद्रा, हुआ है सवेरा।

गालव

(देख कर)

सचमुच सबेरा हो गया। आओ, हम सब भगवती को प्रणाम करें।

सब

(हाथ जोड़ कर घूमते हुए)

(शिखरिणी)

जगद्धात्री तू है जननि ! सब सन्तान हम हैं,
पड़े हैं गोदी में, रुचिरतम हैं या अधम हैं।
नहीं है माँ ! कोई गति तुझ बिना और बस की,
बहे योंही धारा अमृतमय वात्सल्य रस की ॥

(सब प्रणाम करते हैं)

कौन्तलप

देव ! अब मेरे लिए इससे अच्छा अवसर और कौन होगा। शास्त्र की विधि के अनुसार आप सब करावेंगे ही, मैं भगवती के आगे, इसी समय यह राजदण्ड चन्द्रहास को सौंपना चाहता हूँ।

गालव

बड़ी अच्छी बात है। ऐसा ही करो।

कौन्तलप

कृतार्थ हुआ !

(चन्द्रहास से)

वत्स चन्द्रहास ! तुम योग्य हो, तुम से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। तो भी, कर्तव्य के अनुरोध से मुझे कुछ कहना ही चाहिए। यह राजदण्ड, जो मैं तुम्हें सौंपता हूँ, कोई साधारण दण्ड नहीं। इस पर एक बड़े भारी जन-समूह का हिताहित अवलम्बित है। आज तुम इस राज्य के अधीश्वर हुए। राज्य और शासन का उद्देश तुम से छिपा नहीं—

(भुजङ्गी)

प्रजावर्ग के ही लिए राज्य है,
हमें स्वार्थचिन्ता सदा त्याज्य है।
इसी अर्थ है राजसत्ता सभी—
न हो देश में दुर्व्यवस्था कभी ॥

अथवा यही कहना यथेष्ट है कि इस लोक में कोई ऐसी बात न होनी चाहिए जो परलोक के लिए अच्छी न हो। क्योंकि अन्त में हमें वहीं जाना है। इस संसार में सदा कोई नहीं रहता। मुझी को देख लो—

(मन्दाक्रान्ता)

आया जैसा इस जगत में आप वैसा चला मैं,
छूटे सारे धन-जन यहीं, लेचला क्या भला मैं ?
कोई ऐसा अनुचित यहाँ काम होने न पावे,
आनेवाले अमर सुख की शान्ति को जो मिटावे ॥

(राजदण्ड सौंपता है)

चन्द्रहास

(सादर ग्रहण करके)

इन सब बातों का सारांश यह हुआ कि—

(अनुष्टुप्)

स्वार्थी कभी न होऊँ मैं यहाँ के भोग हैं यहीं ।
कर्म्मों को छेड़ा कोई भी साथ जासकता नहीं ॥

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसी उपदेश को अपना उद्देश बनाऊँगा । आशा है, मदन और सुलक्षण मुझे इसकी सिद्धि में समुचित सहायता देते रहेंगे ।

मदन और सुलक्षण

हम यथाशक्य ऐसा ही करेंगे ।

माधव

भगवान् करे सब कोई इस उपदेश को अपना उद्देश बनावे ।

गालव

वत्स चन्द्रहास ! कहो, मैं तुम्हारा क्या हर्ष-साधन करूँ ?

चन्द्रहास

देव !

(इन्द्रवंशा)

प्रत्यक्ष पाया प्रभु का प्रसाद है,
सर्वत्र होता शुभ साधुवाद है ।

पूरी हुई भाग्य-सुधांशु की कला,
तो और मेरे हित हर्ष क्या भला !

फिर भी जब आपका इतना अनुग्रह है तब भरत का यह वाक्य पूरा हो—

(सवैया)

सुख-शांति रहे सब ओर सदा
अविवेक तथा अघ पास न आवें ।
गुण-शील तथा बल-बुद्धि बढ़ें ।
हठ, वैर, विरोध घटें—मिट जावें ॥
सब उन्नति के पथ में विचरें
रति-पूर्ण परस्पर पुण्य कमावें ।
दृढ़ निश्चय और निरामय होकर
निर्भय जीवन में सुख पावें ।

गालव

तथास्तु ।

(पटाक्षेप)